कुछ मोती
कुछ सीप
गोयलीय

'ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रन्थाङ्क ५४

कुछ मोती कुछ सीप

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ममता बेटीको

आठवीं वर्षगाँठपर

२९ दिसम्बर १९५६ ई०

विषय-क्रम

कृति

स्मृति

श्रुति

धृति

कृति

इन्सान नहीं

भारतकी अहिसा एव शान्तिकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिसे प्रभावित होकर चीनसे एक सास्कृतिक शिष्ट-मण्डल भारत-भ्रमणके लिए आया तो वह बम्बई उन दिनो पहुँचा, जबकि राज्य-पुनर्गठन-आयोग-रिपोर्टके विरुद्ध वहाँ उपद्रव हो रहे थे। गली-कूचोमे आग लग रही थी। निर्वस्त्र महिलाओके शव यत्र-तत्र पडे हुए थे। बच्चोकी चीत्कारो और वृद्धाओकी डकराहटोसे सहमकर भेडिये और लकडबग्घेतक बिलोमे छिप गये थे। लोग हाथोमे मशाल और झण्डे लिये हुए जिन्दाबाद-मुर्दाबादके नारे लगाते हुए पिशाच बने हुए निर्द्वन्द्व विचरण कर रहे थे। चौपाटीपर खडे हुए लोकमान्य तिलकके बुतके नीचे बैठी हुई मानवता सर पीट रही थी।

यह घिनावना दृश्य आगन्तुक शिष्ट सदस्योसे न देखा गया तो वे अपने होटलके कमरोकी खिडकियाँ बन्द करके बैठ रहे, किन्तु साथमे आये हुए एक किशोरसे कौतूहल सँवरण न हो सका। एकान्त पाकर उसने अपनी माँसे फुस-फुसाते हुए पूछा—"यह मनुष्य क्या क र रहे है माँ?"

माँने मुँहपर उँगली रखके चुप रहनेका सकेत करते हुए कहा—"ये मनुष्य नही है बेटे?"

किशोर आश्चर्यचकित स्वरमे बोला—"यह मनुष्य नही है, यह आप क्या फरमा रही है माँ?"

"हाँ बेटे, ये मनुष्य नही है।"

"तो कौन है, ये लोग माँ?"

"ये मराठी है, गुजराती है, दक्षिणी है, कच्छी है, और न जाने क्या-क्या है, परन्तु मनुष्य हरगिज़ नही है।"

"मनुष्य हरगिज नही है, यह कैसे? इनकी शक्लो-सूरत तो मनुष्यो-

जैसी ही है माँ ?"
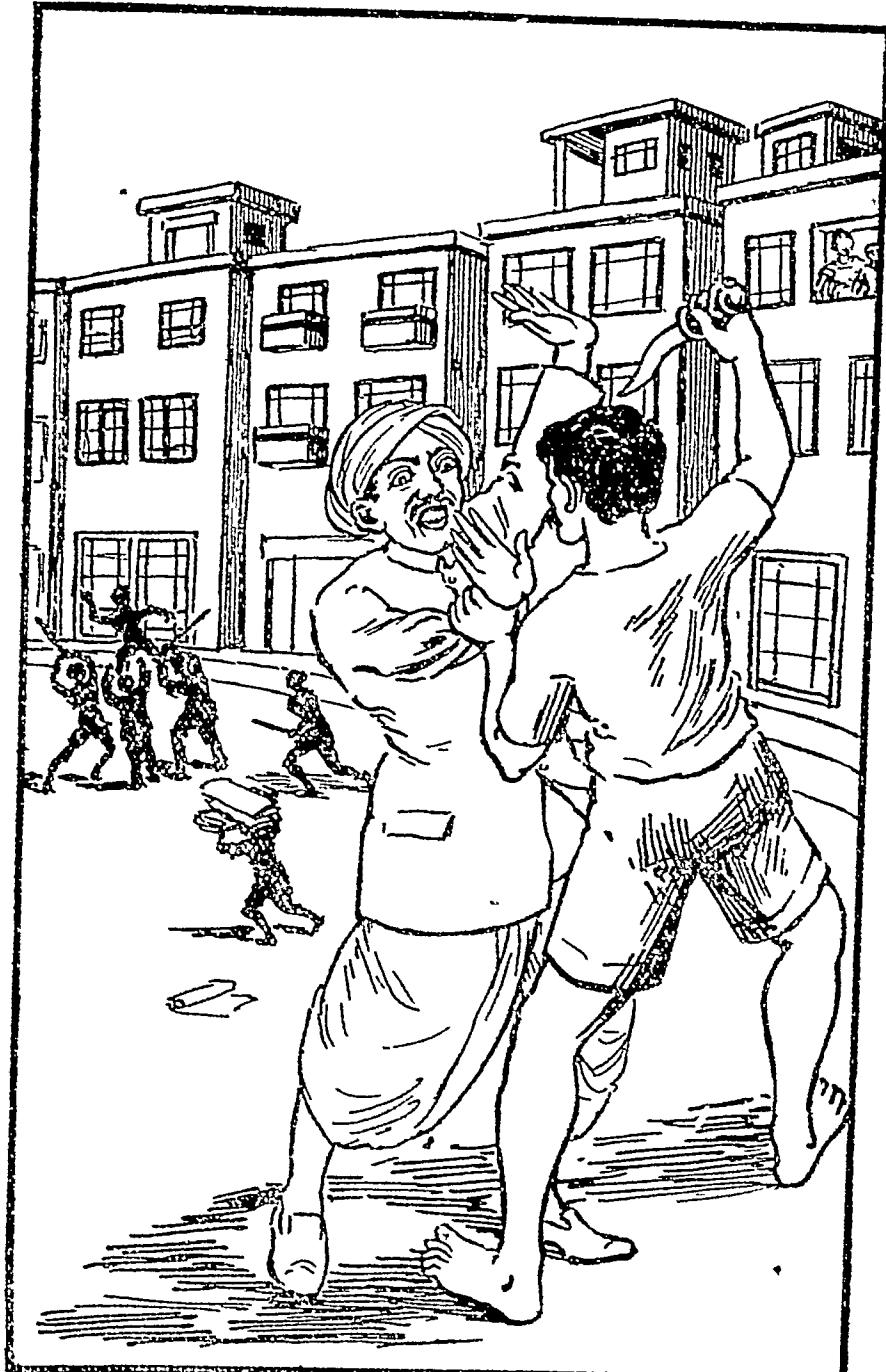
"हुआ करे! शक्लो-सूरत यकसाँ होनेसे क्या होता है? यदि व्याघ्र गौ-चर्म लपेट ले तो वह क्या गौ हो सकेगा?"

"गौकी उपयोगिता न रखने पर भी गौ-मुखी व्याघ्र धोखा तो दे ही सकता है माँ?"

"हाँ, बेटे उसी तरह मानव-वेशमे यह प्रान्तीय भेडिये और सम्प्रदायी लकड़बग्घे मानवताको छल रहे है।"

"मानवताको छल रहे है यह लोग?"

"हाँ बेटे! छल तो कभीके चुके, अब तो उसे निर्वस्त्र करके दुर्योधनको मुँह चिढा रहे है।"

"दुर्योधनको मुँह क्यो चिढा रहे है? यह दुर्योधन कौन था माँ?"

"पाँच हजार वर्ष पूर्व इसी भारतमे इनके पूर्वजोमे एक दुर्योधन हुआ था। उसने तत्कालीन एक असहाय द्रौपदी अबलाको भरे दरबारमे निर्वस्त्र करना चाहा था, किन्तु कर न सका था। आज उसीके वशज द्रौपदीकी अनेक पुत्रियोको निर्वस्त्र करनेमे सफलता पा रहे हैं। उसी विजयोल्लासमे असफल दुर्योधनको मुँह चिढा रहे है, और मानवता मुँह ढाँपे बिलख-बिलखकर रो रही है बेटे!"

"मानवता इतनी अशक्त और असहाय क्यो है माँ! कि वह इन अत्याचारियोको कुछ भी नही समझा पा रही है, और क्षत-विक्षत होती जा रही है।"

"इतने दरिन्दोके समक्ष वह करे भी क्या? भेडियोके झुण्डमे अकेली अजा कितनी विवश होती है, बेटे?"

"ये लोग मनुष्य क्यो नही है माँ?"

"मिठाईमे जैसे मिष्टता लाजिमी है, वैसे ही मनुष्यमे मनुष्यता जरूरी

है। 'नमक-मिर्च, खटाईसे जैसे मिष्टता दूर रहती है, वैसे ही स्वार्थियों, हिंसकों, वंचकोंसे मनुष्यता विलग रहती है।"

"इन्हे आप स्वार्थी, हिंसक, वंचक क्यो कह रही है ? इनके महत्त्वपूर्ण नारे तो देश-देशान्तरोमे गूँज रहे है माँ ?"

"हाँ बेटे, शृगाल जब नीलके हौजमे गिरकर रंगीन हो गया था, तब वह मायावी, वनचरोको मुद्दतो भुलावेमे रखता रहा था, किन्तु अन्तमे उसका वास्तविक रूप प्रकट हुआ कि नही ?"

"हाँ माँ !"

"ये लोग भी अपनी अतृप्त आकाक्षाओको तृप्त करनेके लिए अपना मायावी रूप बनाये हुए है। जैसे कभी नख-दन्त-गलित निःशक्त सिंहने सोनेका कुण्डल हाथमे लेकर मनुष्योको, और बूढी बिलाईने माला पहनकर कमण्डलु हाथमे लेकर चूहोको ठगा था।"

"तब हम लोग यहाँ क्यो आये माँ ? वापिस चलो न माँ ?"

"तू बहुत बातूनी होता जा रहा है। रात बहुत काफी जा चुकी है, अब चुप-चाप सो जा। इसी भारतमे ऐसी भी विभूतियाँ है बेटे, जिनपर विश्वकी शान्ति निर्भर है। इसी भारतमे ऐसे भी मानव हुए है कि उनके स्मरणसे जन्म-जन्मान्तरोके पाप नष्ट हो जाते है। उनकी चरण-रज आँजनेसे आँखोको दिव्य ज्योति प्राप्त होती है।"

"तब उस रजको यह लोग क्यो नही लगा लेते माँ ?"

"तू अब सोयेगा कि नही ? उलूक सूर्य-प्रकाशसे लाभ नही उठा पाता तो उसके दुर्भाग्यपर तरस खानेके सिवा और उपाय ही क्या है ?"

माँ अपने बच्चेके प्रश्नोसे उकताकर उसे थपक-थपककर सुलानेका प्रयत्न करने लगी।

१० फ़रवरी १९५६ ई०

पशु-पक्षी-सम्मेलन

मनुष्योकी नित नई करतूतोसे तग आकर पक्षु-पक्षियोके प्रतिनिधि नेपालके एक बीहड वनमे इकट्ठे हुए। कोयलके मधुर गीतके बाद कागराजने चाहा कि सम्मेलनके अध्यक्षपदको सिहराज सुशोभित करे कि सिह गरजकर बोला—"कागराज ! तुम मानव-ससारमे रहते-रहते मनुष्य बनते जा रहे हो। वरना इस तरहकी बात न कहते। ध्यान रहे यह पशु-सम्मेलन है। अपने समाजमे कौन छोटा कौन बडा ? यहाँ सब एक समान है।"

सिहकी बात सभीको पसन्द आई। पशु-पक्षी गरदन हिला-हिलाकर सिहराजके इस विचारकी सराहना करने लगे। कागने क्षमा माँगते हुए कहा—"सस्कारवश मुझसे सचमुच भूल हुई। मुझे इसका खेद है। लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं मनुष्य हरगिज-हरगिज नही हूँ और न कभी होनेकी कोशिश करूँगा।"

कागराजके इस नम्र व्यवहारसे पशु-पक्षी बहुत प्रसन्न हुए। कोलाहल और कलरव शान्त होने पर तोतेने कहा—

"हमे पशु-पक्षियोकी भलाईकी बाते सोचनी हैं। इसलिए जो भाई-बहन उपयोगी सुझाव देना चाहते हैं, सम्मेलनमे पेश करे। समर्थन और अनुमोदन होनेके बाद सम्मेलन उसपर विचार करेगा।"

तोतेकी बात सुनकर गजराजसे न रहा गया। वह तनिक आवेश भरे स्वरमे बोला—"तोता राम, तुम केवल मनुष्यो-जैसी बोली ही नही बोलते। हर बातमे उनकी नकल भी करते हो। तुम यह बिल्कुल भूल गये कि हम जहाँ बैठे हुए है, वहाँ मनुष्यो-जैसी नक्लो-हरकत करना पाप है।"

भालू अपनी बात पूरी कह भी न पाया था कि एकाएक सम्मेलनमें आतंक-सा छा गया। सभी पशु-पक्षी जिस ओर देखने लगे, वहाँ एक सर्प फन फैलाये दोनों जीभ निकाल-निकालकर आग्नेय नेत्रोंसे पशु-पक्षियोंको घूर रहा था। सन्नाटेको भंग करते हुए मयूर बोला—"यह मनुष्योंका देवता हमारे सम्मेलनमें क्यों आया है? मनुष्य तो अपने बन्धुओंका ही रक्त पीता है, परन्तु उसका यह देवता तो अपनी सन्तानको भी भक्षण कर जाता है। ऐसे कुलसंहारीको फौरन् सभासे निकाल दिया जाय।"

सर्प अपनी सफाईमें कुछ कहना चाहता था, लेकिन गरुड, नेवले, बिलाव आदिके एक साथ विरोध करनेपर उसे मजबूरन जाना पडा। मयूरके इस विरोधकी प्रशंसा करते हुए सिह बोला—"यह माना कि हम पशु-पक्षियोंमें कितने ही मास-भक्षी भी है। लेकिन वे बन्धु-घातक या सन्तान-भक्षी नहीं। अच्छा ही हुआ जो सर्पराजको भगा दिया। इस सम्मेलनका इस पातकीसे क्या वास्ता?"

सिहके उक्त बोल बन्दरको न भाये। वह साहस करके बोला—"बुरा न मानना वनराज, तुम्ही कहाँके भले हो। अपने पेटके लिए रोजाना वनचरोंको मार-मारकर खाते हो। आप किस मुँहसे सर्पकी बुराई करते हैं?"

सिह अपनी सफाई देना ही चाहता था कि बया चट बोल पडी—"वानर, पहिले तुम मनुष्य थे, इसीलिए इतनी मूर्खतापूर्ण बात कह सके हो। मालूम

होता है कि अभी तक पुराने सस्कार मिटे नही ? तुम यह भूल गये कि सिहराज मास-भक्षी होते हुए भी पेटके लिए सजातीय-वध कभी नही करते। वे अपने पेटकी आग उसी इन्सानी-खूनसे बुझाते है, जो दूसरोके शोपणसे इतना जहरीला हो गया है कि घास पर पडे तो वह भी जल जाये। इन्सानी खून न मिलनेपर इन्सानोकी सगतिमे रहनेवाली, भैस, गाय, बकरी आदिका उपयोग करते है। जब वे नही मिलते तब कई-कई रोज भूखे पड़े रहनेके बाद मजबूर होनेपर हिरन-खरगोशको सहमते हुए लेते है। ये मनुष्योकी तरह द्वेष या कौतुक वश किसीका वध नही करते। पेट भरा हो तो दुनियाकी निआमते सामनेसे गुजर जाने पर आँख उठाकर भी उस तरफ नही देखते।"

बया अभी बोल ही रही थी कि पशु-पक्षी एक साथ चिल्ला उठे—"वानर ! तुम अपने शब्द वापिस लो, तुमने व्यर्थ लाच्छन लगाकर वनराजका अपमान किया है। उनका अपमान हम सबका अपमान है। तुम्हारी सूरत और वाणीसे मनुष्यताका आभास मिल रहा है। इस तरहके व्यर्थके छिद्रान्वेषण मनुष्य ही कर सकता है, हमे शोभा नही देता।"

सम्मेलनमे विरोधका बवण्डर उठते देख सिह गम्भीर और सयत होकर बोला—"शान्त-शान्त, साथियो, सम्मेलनमे सभीको बोलनेका पूरा अधिकार है। ध्यान रहे, हम पशु है, मनुष्य नही। मनुष्योकी बातोसे मनुष्योका अपमान होता है। पशु-पशुकी बातका बुरा नही मानते।"

सिहके इस कथनसे साधु-साधुका घोष थोडी देर गूँजता रहा। शान्ति होने पर वानर क्षमा याचनाके स्वरमे बोला—"सज्जनो ! किसी युगमे हम मनुष्य रहे होगे, किन्तु अब हम मनुष्य कतई नही है। हममे एक भी मनुष्यो-जैसा दुर्गुण नही है।"

मैना शेखीमे बोली—"वाह वानर भाई ! तुमने यह एक ही दूनकी

हाँकी। भला तुममे कौन-सा दुर्गुण मानवो-जैसा नही है। केवल पूँछ निकल आनेसे क्या होता है ? तुम मनुष्योकी तरह विषयी, लोलुप, चचल और स्वार्थी हो। यूँ मरे हुए अपने बच्चेको छ महीने गोदमे लिये फिरते हो, परन्तु उसके मुँहका दाना भी निकालकर खा जाते हो। मनुष्योकी तरह तुम भी अपने सजातीयोसे लडते-झगडते हो। भूख न होने पर भी केवल कौतुकवश मूक पक्षियोके अण्डे-घोसले बरबाद करते रहते हो। जिस स्थानमे रहते हो, उसे ही वीरान कर डालते हो। भरी फसल उजाड देते हो। कोई नसीहत करे तो उसे ही नष्ट कर देते हो।"

सभी पशु-पक्षी—"बेशक-बेशक।"

वानर झेंपते हुए बोला—"क्षमा साथियो, मैनाका अभियोग मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन मैं आप सबको यकीन दिलाता हूँ कि इन बुराइयोके होते हुए भी हममे अनेक खूबियाँ भी मौजूद है। हम आपसमे कभी-कभी लडते जरूर है, लेकिन दूसरोके मुकाबिलेपर हम सब एक हो जाते है। हम मनुष्योकी तरह अपने बन्धु-बान्धवोपर आई आफतसे न प्रसन्न होते है, न समाज-द्रोह करते है और न शत्रुसे मिलते है। हम उनकी तरह सचय भी नही करते। हम अपने नेताको नेता मानते है। उसकी आज्ञाका उल्लघन स्वप्नमे भी नही करते। हमारी शक्ल-सूरत धीरे-धीरे बदल रही है। आशा है समस्त अवगुण भी धीरे-धीरे जाते रहेगे। आपने हम पर तो मनुष्य-समानताका दोष लगाया, किन्तु श्वानको कुछ नही कहा, जो उसके जूठे टुकडो पर दिन-रात उसके आगे पूँछ हिलाता रहता है।"

हिरन—"पूँछ ही नही हिलाता, उसके सकेत पर सजातीयोसे लडता रहता है।"

शूकर—"और अन्तर्जातीयो पर भी आक्रमण करता रहता है।"

खरगोश—"इन लोगोके लिए सजातीय और अन्तर्जातीय क्या, यह तो भूखमे अपने बच्चोको भी चबा डालते हैं।"

चीता—"यह मनुष्योका सी० आई० डी० है, इसे सम्मेलनसे भगाया जाय।"

श्वान—"दुहाई है सरदारो, हमारी अरदास सुन लो, फिर जो चाहे फैसला करना। हम इन्सानी आबादीमे रहते-रहते, उनका नमक खाते-खाते अनेक अवगुण अपना चुके है। फिर भी पशुओचित बहुत-से गुण अब भी मौजूद है। हम उनकी तरह न कामुक है, न नमक-हराम है, न रक्षक भेषमे भक्षक है। जो तनिक-सा भी हमपर अहसान कर देता है, जीवन भर हक अदा करते रहते हैं। हम जानपर खेलकर उपकारीकी सेवा करते है।"

हंस—"मेरी नम्र सम्मतिमे एक-दूसरे पर छीटा-कशी करनेके बजाय हमे मुख्य लक्ष्यकी ओर अब ध्यान देना चाहिए।"

सब पशु-पक्षी—"यथार्थ-यथार्थ।"

गर्दभ—"मुझे इस बातका बेहद मलाल है कि मनुष्य मुझे गधा कहता है। मै उसकी एक पाई खर्च कराये बगैर जगलमे घास-पानीसे पेट भर लेता हूँ। हर मौसममे दिन-रात उसके काममे जुटा रहता हूँ। फिर भी वह मुझे डडोसे पीटता रहता है, गधा कहकर मेरा उपहास करता है।"

गजराज—"यह सचमुच बहुत लज्जाकी बात है। इतने सरल और परिश्रमीको गधा कहना कदापि योग्य नही है।"

चीता—"मनुष्यके लिए क्या योग्य है और क्या अयोग्य, इससे हमे क्या मतलब? वह योग्य बात करता ही कौन-सी है, जो हम उसकी अयोग्य बातोका उल्लेख करे?"

सब—"तब क्या करना चाहिए।"

चीता—"जो निठल्लोके लिए श्रम करेगा और बदलेमे कुछ न लेगा,

उसे मनुष्य क्या, सारा ससार गधा कहेगा। इससे बढकर गधेपनकी बात और क्या हो सकती है? गर्दभराजको चाहिए कि वह हजरते-इन्सानके चक्करसे निकलकर हमारी तरह स्वच्छन्द विचरण करे, फिर देखे उसे कौन गधा कहता है?"

सब—"बेशक-बेशक"।

सिंह—"साथियो, हजरते इन्साननें हम सबको गुलाम बनाने और मिटानेका पक्का इरादा कर लिया है। हमारे ही समाजके घोडे, हाथी, भैस, गाय, बकरी, श्वान आदिको गुलामीकी जजीरोमे जकड लिया है। तोता, मैना, बुलबुलको भी फॉसता रहता है। हमारे बहुत-से सजातीयोको मारकर खा जाता है। जो खाये नही जा सकते, उनपर बोझा ढोता है। पिजरो, कटघरोमे बन्द करके रखता है। अजायबघरो और सरकसोमे शेखी बघार-बघारकर हमारा प्रदर्शन करता है। ईमानकी बात तो यह है कि अब वह अपने सिवा ससारमे किसीको रहने देना नही चाहता। अपने मौज-शौकके लिए पर्वतोको तोड-फोड कर जमीनसे मिला रहा है। दरियाओको बाँध रहा है। वनो-जगलोको काट रहा है। अब आप सब भाई-बहन बताये कि हम सब इसके चगुलसे कैसे बचकर रहे और रहे भी तो कहाँ रहे?"

चीता—"बडे भाईने पशु-पक्षी समाजकी समस्याओका बहुत ही सक्षेपमे सुन्दर ढगसे उल्लेख कर दिया है। मुझे केवल इतना कहना है कि जब वह स्वयको गुलाम कहलाना पसन्द नही करता, तब उसने हमारे कुछ भाई-बहनोको गुलामीकी जजीरमे क्यो जकड रखा है? समानताका हिमायती हमारे साथ असमानताका यह दुर्व्यवहार क्यो कर रहा है? और अगर उसे अपने बलका घमण्ड है तो मर्दानावार आकर हमसे लडे। यह कहाँ की शराफत और बहादुरी है कि धोखे-छलफरेबसे छिप-छिपकर हम निहत्थोपर अस्त्र-शस्त्रो-द्वारा गोलके गोल टूट पडे, और इस कायरतापूर्ण हमले

को बहादुरीका नाम दिया ,जाय। अगर हज़रते-इन्सानको अपने बलका जोम है तो सामने आकर हम निहत्थोसे निहत्था लडे। यह कहाँकी मर्दानगी है कि मुँहमे तिनका लिये हुए हिरन, खरगोश जैसे कोमल और निरीह पशुओका कई-कई मनुष्य मिलकर हथियारोसे मुकाबिला करे। आराम करते पक्षियोको धराशायी करे।"

हस—"साथियो, मनुष्य जातिको अपने बल और ज्ञान पर बहुत घमण्ड हो गया है। मगर घमण्डीका सर कभी-न-कभी जरूर नीचे होता है। यह माना कि वह ससार-विनाशके अनेक उपाय निकाल रहा है। मगर आप यकीन रखिये कि ये सब उपाय उसीका नाश करेगे। मकडी औरोको फँसानेके लिए जाला बुनती है, परन्तु स्वय उसमे फँस जाती है। मनुष्योने हमे सतानेको शुरू-शुरूमे हथियार बनाये, परन्तु अब उन्ही हथियारोसे वे परस्पर लडने लगे है। एक-एक गोलेसे लाखो मनुष्योकी हत्याएँ की जाने लगी है। जो दूसरोको गेरनेके लिए गड्ढा खोदता है, उसके लिए भी खुदा हुआ कुआँ तैयार रहता है। आप सब निर्भय होकर विचरण करे, मानव हमारा क्या समूल नाश करेगा, स्वय ही परस्पर लडकर मिट जायगा।"

हसके विचार सभीको पसन्द आये। अन्तमे कोयलके इस गानके बाद सम्मेलनका कार्य समाप्त हुआ।

ज़ुल्म जो ढायेगा इक दिन याद रख।
वह सज़ा पायेगा इक दिन याद रख॥
ज़ुल्मके बदले मिलेंगे जब उसे।
वह भी दिन आयेगा इक दिन याद रख॥
मेटकर हमको कोई क्या पायगा।
खुद ही मिट जायेगा इक दिन याद रख॥

१४ अप्रैल १९५६ ई०

हंस और बगला

एक हसनी मानसरोवर-तट पर चहल-कदमी कर रही थी कि उसकी दृष्टि एक पाँवसे खडे ध्यानमग्न बगले पर पडी। हसनीने पहले कभी बगला नही देखा था। वह उसके मौन शान्त और शुभ्र-रूपसे बहुत प्रभावित हुई। समीप पहुँचकर नतमस्तक हो प्रणाम करके बोली—"योगिराज! आपका ध्यान, तप, तेज सभी अलौकिक है। आप तो कैलास-वासी कोई सिद्ध-तपस्वी जान पडते है।"
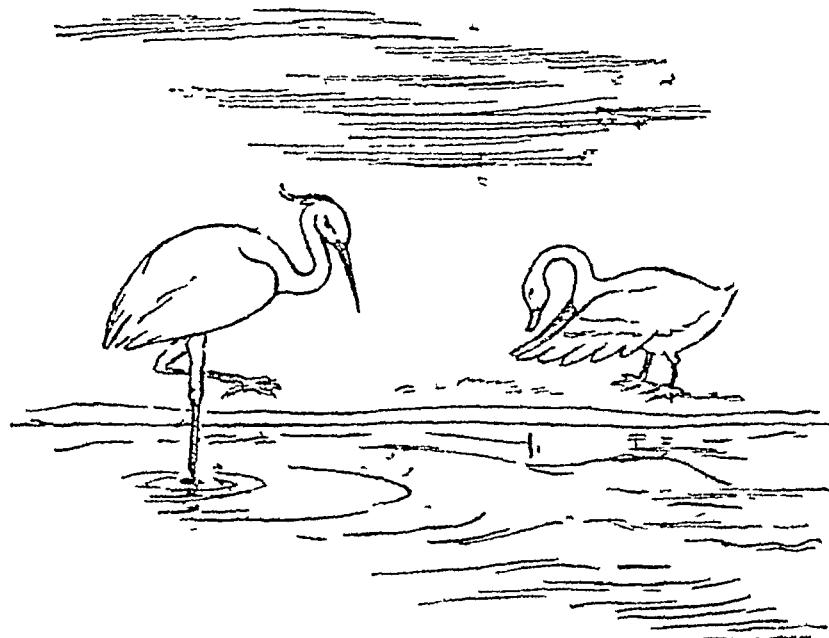
बगलेने अपनी यह अभूतपूर्व अभ्यर्थना देखी-सुनी तो उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह अपने मायावी भावोको नियन्त्रित करके बोला—

"कल्याणी ! यह आपके हृदयकी स्वच्छता है, जो मुझ जैसा अधम इस तरह प्रतिबिम्बित हो रहा है। अन्यथा **"मो सम कौन कुटिल खल कामी !"**

हसनी बगलेके पाँव तलेकी मिट्टी अपने सरपर लगाते हुए गद्‌गद कंठसे बोली—"धन्य हो महात्मन् ! धन्य हो। अहंकार-भावको शरीरसे आपने उसी तरह फेंक दिया है, जिस तरह रामने शिव-धनुष तोड़कर फेंक दिया था।"

बगला हसनीके प्रशंसात्मक वाक्योंसे पुलकित हो उठा, फिर भी संयत होकर बोला—"सुवचने, ऐसा न कहो। मैं तो एक पतित तुच्छ प्राणी हूँ। मन बड़ा चंचल और पामर है। इसे एकाग्र रखनेके जितने प्रयास करता हूँ, उतना ही अधिक बन्दर समान उछल-कूद करता है, उत्पात मचाता है।

"निस-वासर यह भरमति इत उत अगर गही न जाय।"

हसनी विनीत होकर बोली—"सिद्धेश्वर ! पतित-पावन होते हुए भी अपनेको पतित समझ रहे हैं। यह आपकी महानता है। **हीरा मुखते कब कहे लाख हमारो मोल।** आपके दर्शनोंसे मेरा जन्म सार्थक हुआ।"

बगला तनिक और संकोची भाव लाकर बोला—"भद्रे ! कैलासपर शिवके सान्निध्य जीवन-यापन करनेके कारण आप मुझे तपस्वी, योगिराज, सिद्धेश्वर आदि कुछ ही समझ लें, परन्तु मैं वास्तवमें क्या हूँ, यह मैं ही जानता हूँ। **मैं हूँ पतित शिरोमणि देवी।**"

बगलेकी मायावी बातोंमें उलझकर हसनी कातर होकर बोली—"जीवन्मुक्त आपकी यह साधना स्पृहणीय है। आप दया करके इसी सरोवरको अपने तप-तेजसे सदैव आलोकित कीजिये। आपके आहारका समुचित प्रबन्ध कर दिया जायगा, दीनबन्धु !

हसनीके अकस्मात् आगमनसे बगलेके आहारमें अन्तराय पड़ रहा था।

वह हसनी पर अपना वास्तविक रूप प्रकट नही करना चाहता था। जो उसे इतना उच्चकोटिका समझ बैठी है, उसीके समक्ष उसे तुच्छ होनेका साहस न हुआ, किन्तु अधिक ठहरनेसे क्षुधा रोकना असम्भव हो जायगा। और वास्तविक रूप खुल जायगा, इसी आशकासे वह बोला—"एक ही स्थानमे रहना सन्तोके लिए धर्मशास्त्रमे वर्जित है देवी! इस क्षणभगुर ससारमे क्षण-क्षण ही सर्वत्र विचरना उपयुक्त है। अधिक ठहरनेसे मोह-ममता बढते हैं और यही मोह-ममता ससार-भ्रमणके कारण है।"

बगलेको प्रस्थानके लिए उद्यत देख हसनी अधीरतापूर्वक बोली—"कैलास-वासी, तनिक ठहरिये। मैं अपने जीवन-साथीको बुला लूँ, ताकि वे भी आपके दर्शनोसे कृतकृत्य हो सकें।"

बगलेको क्षुधा सता रही थी, अत तनिक रूक्ष स्वरमे बोला—"शुभे! क्षमा करना, स्वेच्छासे हम किसीको दर्शन नही देते। इससे आत्म-विज्ञापनकी गध फैलती है। अहभावका उदय होता है।"

हसनी रास्ता रोककर बोली—"प्रभो, तनिक ठहरिये, मैं आपको भेट स्वरूप मणि-मुक्ता ले आऊँ। यूँ रिक्त हस्त नही जाने दूँगी।"

बगला क्षुधासे पीडित हो रहा था। फिर भी वह व्यग्रता प्रकट न करके शान्त स्वभाव बोला—"नही, मधुरभाषिणी! अब मैं माया-जालमे नही फँसूँगा। तन-पोषणके लिए अनेक जन्म-जन्मान्तरोसे—**भरि-भरि उदर विषयको धायो जैसे सूकर ग्रामी।** गुरु-कृपासे मेरे अन्तर्चक्षु खुल गये है। मैं अब मोहान्धकारमे नही भटकना चाहता। अच्छा भद्रे, धर्माशीष।"

बगला जबतक उडकर ओझल न हो गया, तबतक हसनी उसे अपलक देखती रही। फिर उसकी चरण-धूलिमे लोट-पोटकर रैन-बसेरे गई। हसने वृत्तान्त सुना तो दर्शन न पा सकनेका उसे बहुत दु ख हुआ। कई रोज़ योगिराजकी चर्चा चलती रही।

दस-पाँच दिन बाद हस-दम्पति विहार करते हुए सरोवरसे तनिक दूर निकल गये। सहसा वहाँ खडे हुए बगले पर हसकी नजर पडी तो उसमे हसनीके बताये हुए योगिराजसे बहुत कुछ साम्य मालूम हुआ। तनिक ध्यानसे देखा तो आभास हुआ कि योगिराज पानीमे चोच डालकर कोई वस्तु गलेमे उतार रहे हे। हस हसनीको सकेतसे योगिराजको दिखाना ही चाहता था कि बगलेने भी उनको देख लिया। वह पाखण्डी मुसकराते हुए बोला—"आओ भद्र, भद्रे आओ। वास्तविक लीला जब स्वय आप लोगोने अवलोकन कर ली है, तब भक्तोसे गोपनीय रहा ही क्या? जैसे थल-चरोके उद्धारके लिए पहले अवतार होते रहे हैं, वैसे ही इस कलियुगमे मैने जलचरोके उद्धारनिमित्त यह शरीर धारण किया है।"
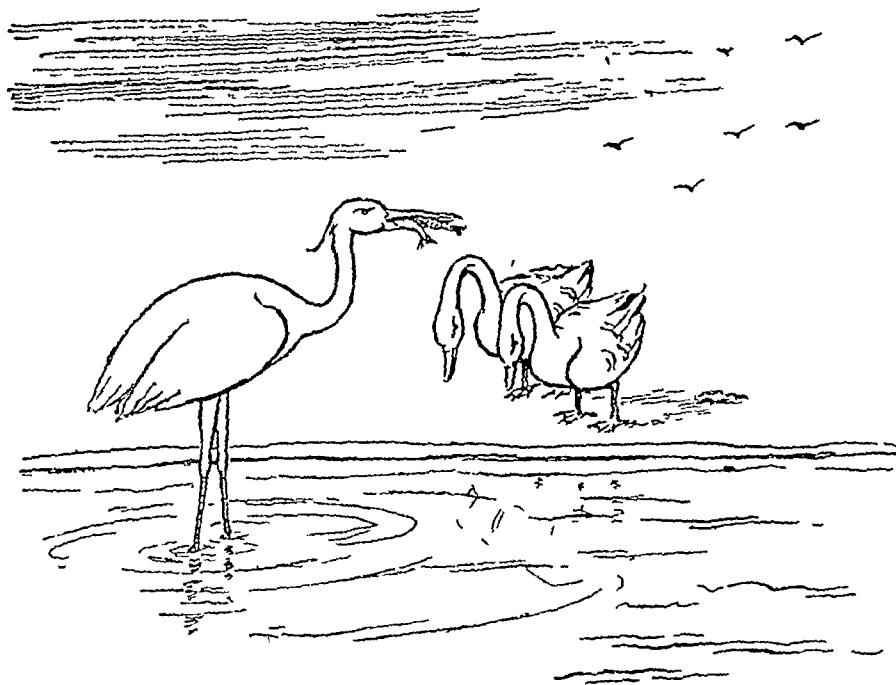
हस-हसनीने मस्तक टेक कर प्रणाम करते हुए विनीत भावसे कहा—"पतितोद्धारक प्रभो, आप वास्तवमें अवतारी हैं। इन तुच्छ प्राणियोके लिए कैलास-वास छोडकर धराधाम पर आये, आपके इस परोपकारी स्वभावको हम शत-शत वन्दन करते हैं।"

बगला अब नि सकोच मानसरोवरके तटपर मत्स्य-भक्षण करता रहता है और धर्मभीरु हस-हसनी उसकी सहार-लीलाको पतितोद्धार समझकर पुलक उठते हैं। पास इस सकोचसे नही जाते कि कही योगिराजकी एकाग्रता भग न हो जाय।

४ मार्च १९५६ ई०

बदनाम अगर होंगे........?

एक रोज एक शुतुरमुर्गने जगलमे घूम-घूमकर बा-आवाज़ बुलन्द ऐलान किया—"आज हम आसमानमे उडेगे, आज हम आसमानमे उडेगे।"

ऐलान सुना तो जगलके परिन्दे आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि यह दैत्याकार आसमानमे कैसे उड सकेगा? फिर भी कौतूहलवश सब एकत्र हो गये। परिन्दोके आजानेपर शुतुरमुर्गने अपने पख इस तरह फैला दिये, जैसे उडनेसे पूर्व वायुयानके डैने फैल जाते है। उसका यह विशाल रूप और उडनेकी तैयारी देखकर परिन्दोको विश्वास हो गया कि आज यह जरूर आसमानमे उड जायगा। फिर उन्हे ख़याल आया कि उडनेके बाद यहाँ आये या कही सुदूर स्थानमे उतर जाये, इसलिए अभिनन्दन स्वरूप कुछ-न-कुछ जरूर होना चाहिए। अत कोयलने पचम स्वरमे अभि-नन्दन-गीत अलापा। कुमरी और बुलबुलने मिलकर मुबारकबादी गजल छेडी, कबूतरोने कत्थक-नृत्य और मयूरोने लोक-नृत्य प्रस्तुत किया। तोतेने मागलिक दो शब्द कहे, बयाने निर्विघ्न यात्राकी कामना की और मैनाने मँहदीके पत्ते चबाकर तिलक किया। फिर सब अपने नेताके आकाश-गमनकी प्रतीक्षामे मौन खडे हो गये।

शुतुरमुर्ग पख फैलाये हुए बडी शानसे १०-५ कदम जमीनपर चला, फिर पर समेटकर अपनी मादाको साथ लेकर रैन-बसेरेकी तरफ मुड गया। चलते-चलते रुँआँसी-सी मादा बोली—"नाथ, आपने आज यह क्या कौतुक किया? मै तो शर्मसे गड-सी गई।"

शुतुरमुर्ग रुखाईसे बोला—"इसमे शर्मकी क्या बात थी, यह तो हमारा एक अदना करिश्मा था। तुम इन चालोको क्या समझो?"

शुतुरमुर्गकी इस ढीठतापर मादा तुनककर बोली—"वाह अच्छा आपका करिश्मा रहा। सारे जगलमे उडानकी शेखी बघारते फिरे, सब परिन्दोमे खूब वाह-वाही लूट ली और उडनेके नामपर सिर्फ डैने फैलाकर रह गये और मुँह लटकाये चुपचाप डेरेके लिए खिसक लिये। इस ज़िल्लतसे बढकर निगोडी शर्मकी बात और क्या होगी।"

मादाको आवेशमे देखकर शुतुरमुर्गने सहमते हुए जवाब दिया—"तुमने देखा ही नही कि मेरे क्षणिक वियोगके भयसे उन सबका मुख कैसा मलीन हो गया था और वे किन व्याकुल नेत्रोसे मुझे देख रहे थे ? मै उन्हे ऐसी दयनीय स्थितिमे छोडकर कैसे उड सकता था ? भले ही मुझे उपहासास्पद होना पडा, किन्तु अपने साथियोकी दिलजोईके लिए मुझे यह लाञ्छना-हलाहल पीना जरूरी हो गया था। अपनोके लिए क्या मै सम्मान एव प्रतिष्ठाका इतना बलिदान भी न करता ?"

पतिके मायाचारी रूपको जानते हुए भी मादा सहज भावसे बोली—"जब उडना हमारी सामर्थ्यके परे है, तब क्यो ऐसी लाञ्छना अकारण ओढी ?"

शुतुरमुर्गने मादाकी आँखोमे आँखे डालते हुए कहा—"तुम इसे लाञ्छना समझती हो ? यही तो हमारी शान है। हम जो कहते है, वह किया नही करते, इस कामके लिए काफी मूर्ख दुनियामे भरे पडे है। हम नेता है, अनुयायी नही। हम सिर्फ कहते है, और सब उसका पालन करते है। यही सदासे होता आया है और यही हमेशा होता रहेगा ?"

मादाको कुछ सूझ नही रहा था कि अब वह क्या कहे ? फिर भी उसने साहस बटोरकर पूछा—"मगर यह उडानकी शेखी बघारनेसे क्या लाभ हुआ ? सिवा जगहँसाईके ?"

शुतुरमुर्ग चहककर बोला—"इसे तुम जगहँसाई कहती हो रानी !

अगर उडानका ऐलान न करता तो ये कम्बख्त मेरा ऐसा शानदार सत्कार करते ? छल-प्रपच, धोखे-फरेबसे जैसे भी बने अपनी पूजा कराओ हमारे नेता-शास्त्रका यही मूल मन्त्र है।"

"परन्तु नाथ हम कल कैसे पक्षी-समाजमे मुख दिखा सकेगे ? वे सभी हमे देख-देखकर उपहास करेगे ?" मादाने रुँधे कण्ठसे कहा तो शुतुरमुर्ग सगर्व बोला—

"तुम देख लेना वे मूर्ख हमारा उपहास न करके आभार मानेगे। क्योकि उन्हे विश्वास है कि मैने उनके हृदयको वियोग-व्यथाका आघात न पहुँच जाय, इसी लोकोत्तर भावनासे उडान नही भरी है। और तुम्हारी आशकाके अनुकूल कुछ लफगे खिल्ली उडाये भी तो अपना क्या बनता बिगडता है। तिरस्काररूपी हलाहल पीनेका हमे अभ्यास होना चाहिए। दुनिया भुलक्कड स्वभावकी होती है। धीरे-धीरे सब भूल जाती है। हम इसी शानसे विचरते रहेगे। साथी हँसते है तो हँसे। यह एक दिनका स्वागत-सत्कार जीवनभरकी लाञ्छनाओसे कीमती है।"

मादा निरुत्तर होकर पतिके इस बेहयाईके जीवनपर रातभर आँसू बहाती रही।

२८ अगस्त १९५६ ई०

विषाक्त संसार

मुरझाया हुआ फूल घासपर पडा हुआ नव विकसित कलीकी मुसकान ईर्ष्यासे देख रहा था कि उन तितलियोकी अठखेलियाँ और भौरोकी सरगोशियाँ उससे न देखी गईं, जो कलतक उसके प्यारका दम भरते थे।

मुरझाया फूल मारे ईर्ष्याके घासपर इधर-उधर लुढकते हुए दिनभर सर धुनता रहा। शरीरको क्षत-विक्षत करता रहा। रात होने पर भी फूलने जब चैन न पाया तो उसकी इस विकलतापर नभको भी रुलाई आ गई।

नभके आँसू मुरझाये फूलपर गिरे तो उसके सतप्त हृदयको कुछ

सान्त्वना-सी मिली। नभकी इस समवेदनाको पाकर उसे कुछ-कुछ ढाढस-सा बँधा। तभी मुसकाती कलीका एक पत्ता गिरते देख वह हर्षोन्मत्त हो उठा। कलीकी भी अपनी जैसी गति होते देख उसके मुरझाये मुखपर स्मित-रेखा-सी दौड़ गई। तभी ओसने सकुचाते हुए कहा——

"कल तुम भी मुरझाये हुए फूलोको देख हर्षोन्मत्त हो रहे थे। वायुने बार-बार तुम्हे सकेत किया कि 'बावरे, इस क्षणिक उल्लासपर इतराना उचित नही। यहाँ न जाने कितने फूल खिल-खिलकर मुरझा गये'; परन्तु तुम न माने, उलटे हवासे-ही उलझ पडे। परिणाम-स्वरूप जमीनमे पडे हुए सर धुन रहे हो। अपनी शोचनीय स्थितिपर रुदन कर रहे हो, परन्तु अपने नवागन्तुक बन्धुके पतनपर ईर्ष्यावश पुलक भी रहे हो। यह ईर्ष्यालु स्वभाव तो मनुष्योका होता है, तुम्हे यह दुर्बुद्धि कहाँसे प्राप्त हुई बन्धु ! मालूम होता है हजरते-इन्सानकी परछाई तुमपर भी पड गई है।"

"क्या मनुष्यकी परछाई पडनेसे उसके अवगुण भी प्रवेश कर जाते है बहन !" फूलने सहज स्वभाव प्रश्न किया।

ओस भीगे हृदयसे बोली——"हाँ, इसकी परछाईसे पाताल स्थित लोक नरक हो गया। इसके छूनेसे क्षीरोदधि खारा समुद्र बन गया। सूर्य-चन्द्र घबरा कर नभमे चले गये। यह पर्वतोको रौदकर पृथ्वीमे मिला देता है। किलोल करते हुए दरियाओको बाँध देता है। गाते हुए पक्षियोको पिजरेमे डाल देता है। मुँहमे तृण लिये हुए वनचरोको धराशायी कर देता है। और अब इसकी कौतुक-प्रियता इतनी बढ गई है कि अपनी ही माँ-बहनको नग्न देखना चाहता है। अपने ही समूहका रक्त पीना चाहता है।"

मुरझाये फूलने मुसकरानेकी चेष्टा करते हुए कहा——"तब तो बहन, इस विषाक्त ससारसे छूटते हुए मुझे परम सुखका अनुभव हो रहा है।"

१३ मार्च १९५६ ई०

चाहतका परिणाम

तितली और भौरा अपनी-अपनी चाहतकी डीगे हाँक रहे थे। तितलीका कथन था—"फूल मुझे प्राणपणसे चाहता है। मेरे अतिरिक्त वह किसीकी तरफ देखता भी नही। मुझे आँखोसे तनिक ओझल होते देख काँटोपर लोटने लगता है। क्षणभरमे अपनेको लहू-लुहान कर लेता है, और जब मुझे आते देखता है तो झूमने लगता है। जितना मेरा प्रियतम रूपवान, कोमल और अलबेला है, उतनी ही मै भी हसीन, शोख और नाजुक हूँ। हमे देखकर लोगोको रश्क होता है, और एक तुम हो, कुरूप, अभागे, न कोई साथी, न कोई प्रेयसी। फिटमारे-से इधर-उधर भटकते फिरते हो।"

तितलीके व्यग्यपर भौरा भन्ना उठा। वह कुढकर बोला—"तुझे अपनी करनीपर शर्म आनेके बजाय नाज़ है। यह इस जमानेका करिश्मा ही कहना चाहिए, जो तुझ जैसी हरजाई प्रेमका दम भर रही है। तेरी इस दीदादिलेरी पर क्या कहा जाय? जब तू फूलोके पाससे गुजरती है, तो मारे गैरतके वह सुर्ख हो जाते है। शर्मसे पसीने-पसीने हो उठते है, और काँटोमे मुँह छिपानेको मजबूर होते है। रही मेरी बात, सो मै श्याम जरूर हूँ; परन्तु तुझे क्या मालूम इस रगमे कितनी कशिश होती है? जिधर निकल जाता हूँ, कलियाँ आँखे बिछाने लगती है। मन्द-मन्द मुसकानसे मेरा स्वागत करती है। मेरे रसिक स्वभावपर झूम-झूम उठती है। मेरे साँवले-सलोने रूपपर बलि-बलि जाती है। जिस तरफ भी प्रीतिका राग गुन-गुनाता निकल जाता हूँ, कलियोपर जवानी छा जाती है। कहाँ मै, कहाँ तू? मेरे प्रेमसे तेरे हरजाईपनकी क्या तुलना? मै कलियो रूपी गोपिकाओमे कन्हाई-जैसा और तू कसके दरबारकी नर्त्तकी-जैसी।"

तितली भौरेके गर्वीले वचनोका प्रत्युत्तर देना ही चाह रही थी कि राजकुमारीने फूल तोड़कर जूडेमे लगा लिया और कली सीनेपरकी साडीमे टॉक ली तो फूल एव कली दोनो ही अपने-अपने भाग्य पर इतराने लगे।
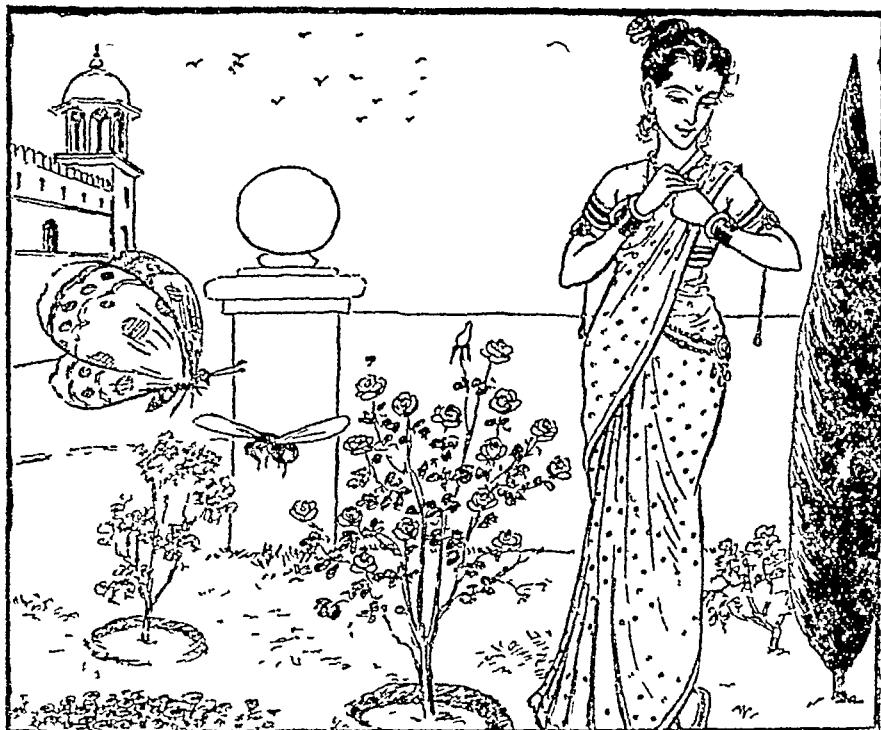
और तितली-भौरे दोनो शेखीखोरे एक-दूसरेसे भिन्न दिशामे अपना-सा मुँह लेकर चलते बने।

३ मार्च १९५६ ई०

झूठी शान

मधुमक्खी फूलसे उडकर अपने छत्तेकी तरफ लौटनेको प्रस्तुत हो रही थी कि वहाँ एक ततैया आनिकला। पहिले तो वह मक्खीको देखकर भिन्नाया और इधर-उधर उडता रहा। फिर मनकी घृणा उँडेलते हुए बोला—
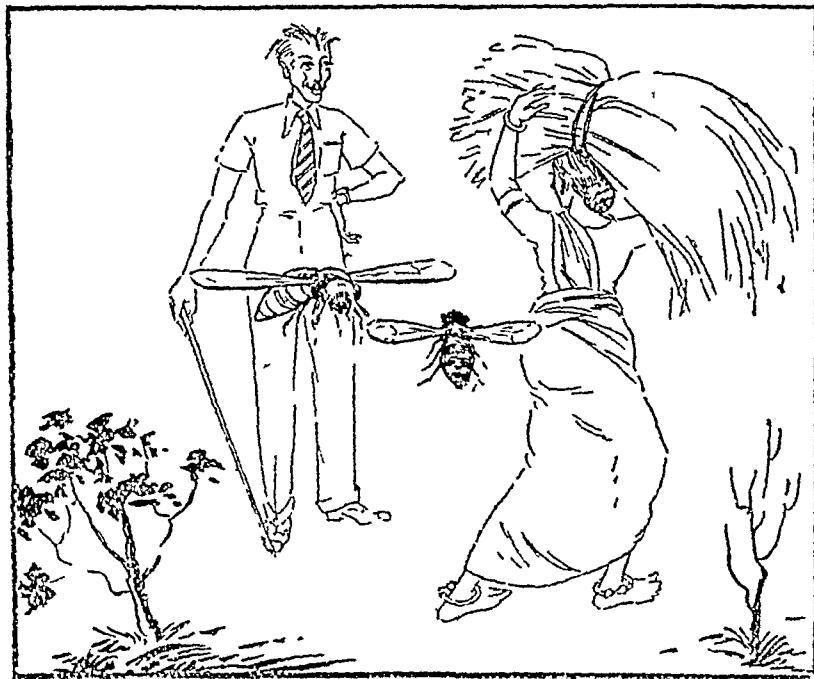
"तुम इतनी कुरूप और घिनावनी हो कि तुम्हारे पडोसमे रहना भी हमारे लिए सभव नही। यदि तुम्हे रूप नही मिला तो न सही, होली-दीवाली ही सही कभी छठे-चौमास नहाकर शरीर तो स्वच्छ कर लिया

करो। तुम्हारे इस फूहड एव बेढगेपनसे हमे तो बहुत शर्म मालूम होती है। समस्त कीट-पतग समाजमे तुम-जैसा कुरूप और घिनावना मुझे और कोई नजर न आया। तुम्हारी वजहसे उच्च-सोसायटीमे जाते हुए भी हमे तो झिझक मालूम होती है कि कहाँ हमारा कुन्दन-सा शरीर और कहाँ तुम्हारा यह बदरूप . . . !"

ततैया न जाने अभी कितनी डीगे हाँकता कि मधुमक्खीने जानेकी शीघ्रतामे बातके बीचमे ही मधुरतापूर्वक जवाब दिया—

"भाई! बनने-सँवरनेका हमारे पास समय कहाँ? जो पर-श्रमपर जीवित रहते है, उन्हे बनने-सँवरनेका समय मिल जाता है। तुम हमारी चिन्ता न करो। हम तो किसी ऊँची-नीची सोसायटीमे कभी जा नही पाती। तुम नि सकोच तितली-भौरोके साथ वहाँ जाया करो। यदि मौज-मजासे थोडा-बहुत अवकाश मिले तो स्वावलबी बननेका भी प्रयास किया करो। तन मैला रहता है तो रहने दो, दूसरोके अहसानसे मनको मैला न होने दो। ऊँचोके समीप बैठना है तो स्वयको भी उच्च बनाओ। क्षुद्र-स्वार्थी बने रहे तो सर्वत्र दुत्कारे जाओगे।"

मधु-मक्खी तो शीघ्रतासे अपने छत्तेकी तरफ चलती बनी, मगर ततैया घण्टो मन ही मन भुन-भुनाता रहा। उसकी भुनभुनाहटसे सर इकबालके इस शेरका कुछ-कुछ आशय ध्वनित हो रहा था—

खुदाकी शान है ना-चीज चीज बन बैठे।
जो बेशऊर थे यूँ बा-तमीज बन बैठे॥

४ मार्च १९५६ ई०

मेर-तेरके झगड़े

कुमरी सरूके पेड पर और बुलबुल गुलाबके पेडपर बैठी हुई परस्पर वाद-विवादमे उलझी हुई थी कि समीप पेड़पर बैठे हुए तोतेको हँसी आ गई। पास ही बैठी हुई मैनाने हँसीका सबब पूछा तो किसी तरह हँसीको जब्त करते हुए तोता बोला—"भाभी! यह दोनो
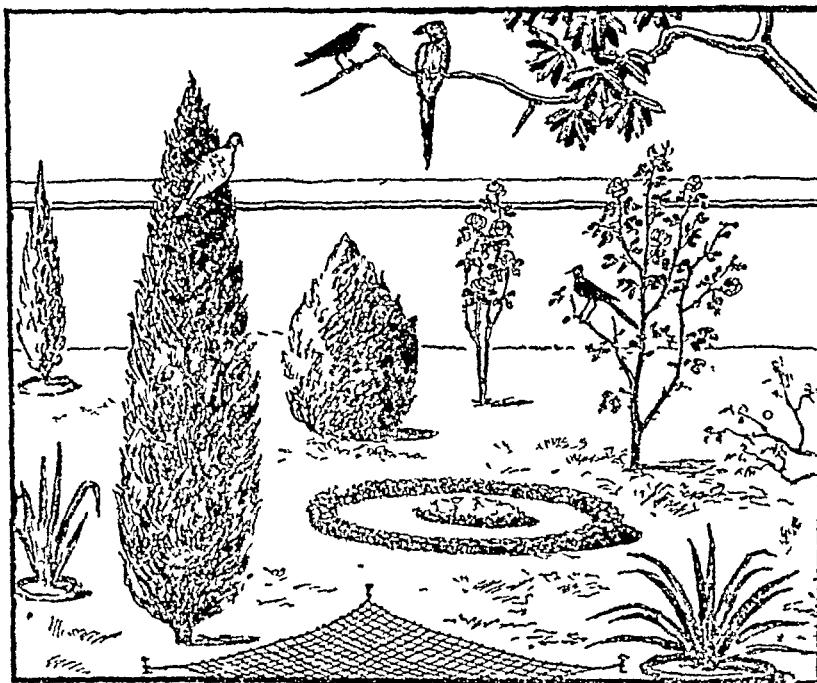
इस बातपर झगड रही है कि चमनका वास्तविक अधिकारी कौन है? दोनो ही अपना-अपना अधिकार प्रमाणित करनेके लिए जमीन-आसमानके कुलावे मिला रही हैं। बुलबुलने दलील पेश की है कि

हम लोगोने चमनको अपने रक्तसे सीचा है। तभी फूलोपर यह निखार आया है।" कुमरी उसकी दलीलकी धज्जियाँ उडानेके प्रयत्नमे फरमा रही है—"रक्तसे सीचा है तो कौन-सी अनोखी बात की है। सैयादने तुम लोगोको मारकर गिरा दिया तब खादमे मिलनेसे तुम्हारा कुछ उपयोग हो गया तो इसमें तुम्हारा अहसान क्या हुआ? यह तो मरी हुई बछिया बाभनके सिर वाली युक्ति हुई। चमनके वास्तविक स्वामी हम है, हमने अपने नग्मोसे इसमे जान फूँकी है। चमनपर यह जवानी हमारी बदौलत छाई हुई है।"

मैनाने उत्सुकतासे पूछा—"तो फिर इसमे हँसनेकी बात क्या हुई?"

"हँसनेकी बात नही है?" तोतेने पेडके नीचेकी तरफ सकेत करते हुए कहा—"सैयाद-द्वारा बिछाया हुआ जाल ये देख नही रही है, और मेर-तेरके झगडेमे उलझी हुई है।"

> है ताकमे उकाब[1] तो शहबाज[2] घातमे।
> हमलेसे याँ अजलके[3] नहीं एक दम फरार[4]॥
> बुलबुलो[5]-कुमरीमें है, झगड़ा कि चमन किसका है।
> कल बता देगी खिजाँ यह कि चमन किसका है॥
>
> —हाली

> यह चमन यूँ ही रहेगा और हजारों जानवर।
> अपनी-अपनी बोलियाँ सब बोलकर उड़ जायेंगे॥
>
> —अज्ञात

२ मार्च १९५६ ई०

---

[1]गिद्ध, [2]बड़ा बाज, [3]मृत्युसे, [4]चैन, फुरसत, [5]यहाँ शायरने 'कबक' लिखा है, परन्तु हमने प्रसगवश कबकके बजाय बुलबुल बना देनेकी धृष्टता की है।

अनधिकार चेष्टा

बुलवुल अपनी वच्चीको गरमी, वरसात सर्दीके, हेर-फेर समझा चुकी थी। नग्मेकी तालीम भी पूरी दे चुकी थी कि यकायक वहारमे पतझडके आसार झलकते-से दिखाई दिये तो कलेजा मसोसकर रह गई।

वच्चीके चपल नेत्रोसे मॉकी यह व्यथा ओझल न रह सकी। उसने मिन्नत-समाजत करके किसी-न-किसी तरह मॉकी आशकाका कारण और पतझडके परिणाम मालूम कर ही लिये। वह अवोध तडप-तडपकर वोली—"माँ यूँ मन-ही-मन घुटनेसे क्या लाभ? मै अभी जाकर मालीको सूचित किये देती हूँ ताकि वह सावधान हो जाये।"

वुलवुल वच्चीको उडनेसे रोकती हुई वोली—नही वन्नो! यह उचित नही।"

"क्यो माँ?" वच्चीने तनिक मचलते हुए पूछा। वुलवुलने उसके सर पर प्यार करते हुए कहा—"पगली, हम नग्म-ए-वहारॉ छेडनेके लिए है। पतझड आनेकी मनहूस खवर तो उल्लू ही चारो तरफ फैला देगे।"

वच्चीके मनमे मॉकी वात घर न कर सकी। वह अवसर पाकर चुपचाप निकलकर वागवॉके झोपटेके समीप पेडपर वैठ कर आमदे-खिजॉसे वागवॉको वेदार करने लगी।

वागवॉ घरवालीसे लड-झगड़कर रातको देरसे सोया था। वह नुवहे-नसीमकी मीठी-मीठी थपकियोका आनन्द पूरी तरह ले भी न पाया था कि सुवह-सुवह पतझडके आगमनकी मनहूस खवर सुनकर क्रुद्ध हो उठा और पासमे रक्खी गुलेल मारकर वच्चीको वरागायी कर दिया।

२८ अगस्त १९५६ ई०

औक़ातके बाहर

एक घोडा सरोवरके किनारे जल पीने जाया करता था। उस सरोवरके किनारे रहने वाली मेडकीको घोड़ेके खुरमे लगी हुई नाल बहुत भाई। घोडा जब भी पानी पीने आता, मेडकी उसकी नाल और चालको
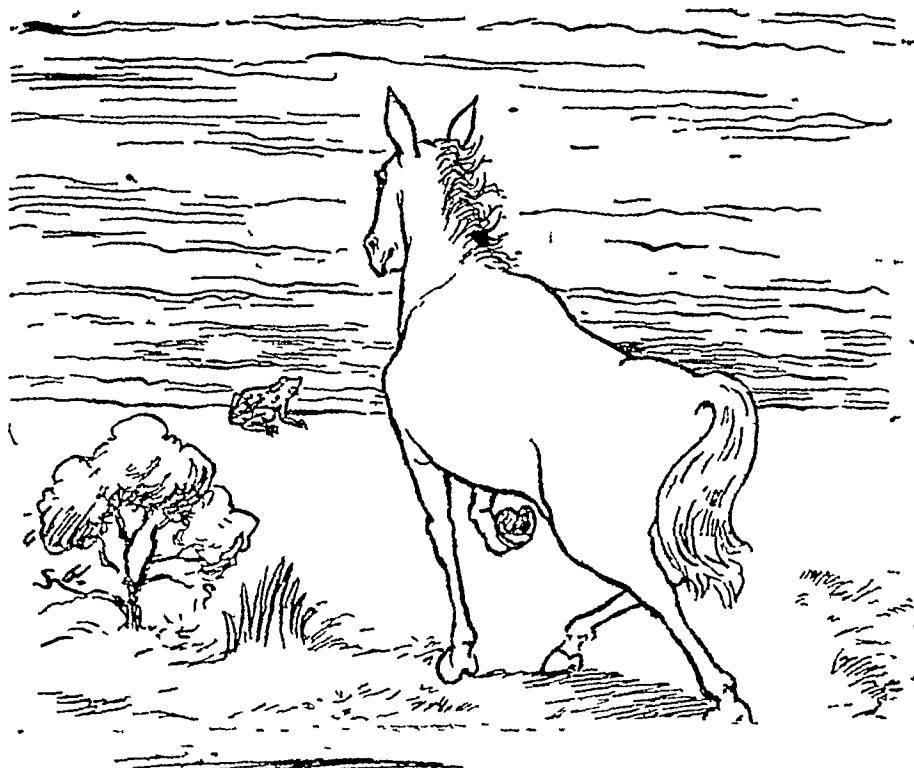
ललचायी नजरोसे देखती रहती। नालकी चमकने और खट-पटकी पग-ध्वनिने उसे बहुत आकर्षित किया। धीरे-धीरे उसका विश्वास हो गया कि नालकी बदौलत ही घोडा इतनी अच्छी चाल चलता है। अत एक दिन उसने साहस बटोरकर पूछा—

"घोडे भाई! यह नाल तुमने कहाँ लगवाई?"

घोडेने आश्चर्यचकित होकर मेडकीकी तरफ देखा और उपेक्षा भरे स्वरमे कहा—"बी मेडकी, यह तुम किस लिए पूछ रही हो?"

बी मेडकी पुलककर बोली—"मै भी इसी तरहकी नाल लगवाना चाहती हूँ।"

घोडा मेडकीकी इस मूर्खता पर और उसके नन्हेंसे वजूदकी तरफ हैरतसे देखता रह गया। उसने कौतूहलवश पूछा—"तुम नाल कहाँ लगवाओगी?"

मेडकी तिनककर बोली—"यह भी तुमने अजीब सवाल किया? तुम्हे दिखाई नही देता कि मेरे पाँव इतने कोमल है कि घासपर चलते हुए भी छिलते है। सोचती हूँ कि मै भी नाल जडवा लूँ तो तुम्हारी तरह दुलकी चला करूँ।"

मेडकीकी इस शेखीसे चिढकर घोड़ेने उसपर पाँव रख दिया तो मेडकी एक चीकी आवाज़के साथ नालके अन्दर ही विलीन हो गई।

९ मार्च १९५६ ई०

एक समान

एक वैसाखनन्दन जगलमे घास चर रहा था। गो-वत्सको समीपसे जाते हुए देखकर बोला—"कहिये भाई साहब, कहाँ तशरीफ ले जा रहे है?"
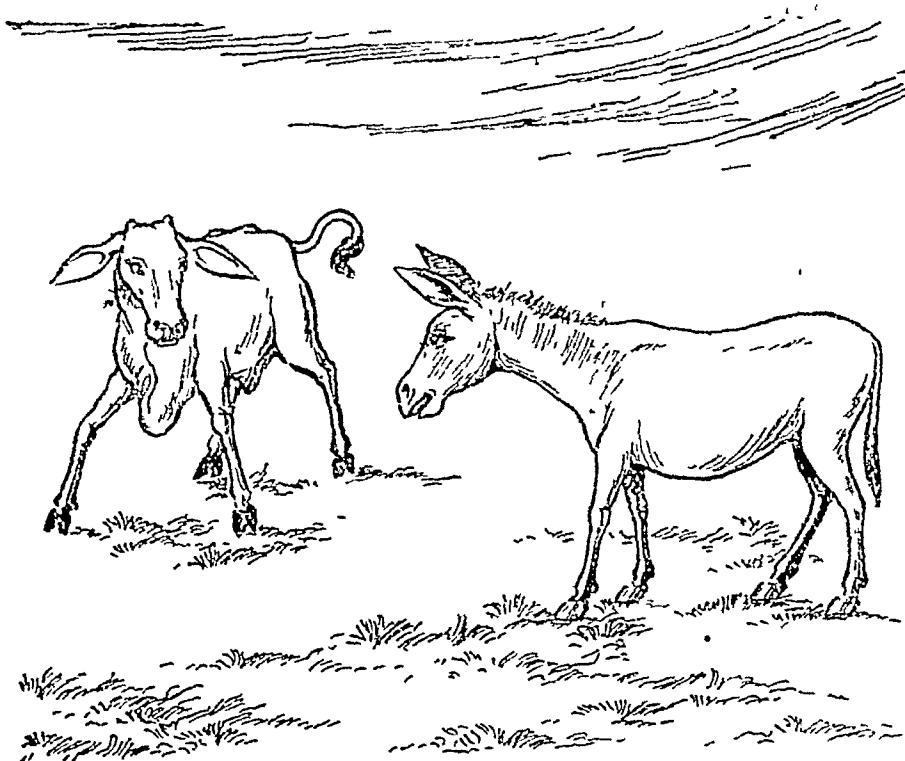
गो-वत्सको गधेका यह सम्बोधन कुछ खल-सा गया। उसने रुखाईसे उत्तर दिया—"तुम सचमुच गधे हो। तुमने मुझे भाई साहब किस अधिकारसे कहा?"

"समान धर्मी, समान जाति होनेके नाते।"

"मुझमे और तुममे समानता?" यह तुमने खूब गधेपनकी कही।"

"भाई साहब, आप तो व्यर्थमे उछलते है। आपमे और मुझमे कही भी तो अन्तर नही है। मेरे जैसे ही तुम भी गोरे-चिट्टे हो। मेरे समान ही तुम्हारे पूँछ और खुर है। मेरी ही तरह तुम्हारे भी सीग नही उगे है। आहार-विहार भी समान है। मनुष्य हम दोनोपर बोझ लादता है। क्रोधावेशमें हम दोनोका ही वह स्मरण करता है। कभी किसीको गधा कहता है और कभी किसीको बैल कहता है।"

गो-वत्स क्या जवाब देता? वैसाखनन्दनको मुँह लगानेके बजाय चुप-चाप चले जाना ही उसने श्रेयस्कर समझा।

१० मार्च १९५६ ई०

घमण्ड कबतक ?

"नानी, यह ऊँट इतना उछल-कूद क्यों रहा है ?"

"इसे अपनी ऊँचाईपर घमण्ड हो गया है बेटे !"

"यह घमण्ड कब दूर होगा, नानी ?"
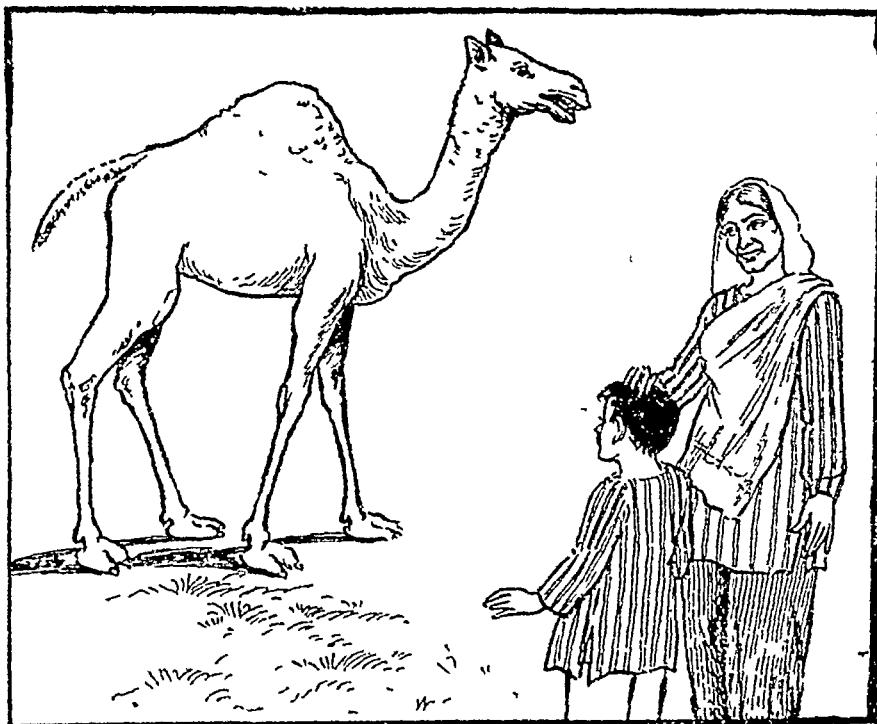
"जब यह किसी पहाडके नीचे-से निकलेगा, इसका समस्त घमण्ड पानी-पानी हो जायेगा।"

१ मार्च १९५६ ई०

अज्ञात शहीदोंकी यादमें

पतगा—"कहिये भाई साहब, आज कहाँ तशरीफ जा रही है ?"

जुगनू—"क्षमा करना भैयाजी, मै अपनी धुनमे उडा जा रहा था। शीघ्रतामे आपकी तरफ ध्यान न दे सका, इस बेअदबीके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

पतगा—"आप तो भाई साहब, शर्मिन्दा करते है, भला अपने छोटोसे भी कही इतनी नम्रताका व्यवहार किया जाता है। सभ्यता-विनम्रताका गुण कोई आपसे सीखे। हाँ तो भाई साहब आज किस शीघ्रतामे है ?"

जुगनू—"प्यारे भाई, हमारे समाजने निश्चित किया है कि आज रात भर उन अज्ञात शहीदोकी यादमे चरॉगा किया जाय, जो लोकोपयोगी कार्योके लिए चुपचाप मिट गये। जिनकी न कोई समाधि है, न कोई कब्र, न कोई स्मारक, न कोई निशान।"

पतगा—"बहुत सुन्दर, महान् और अभिनन्दनीय निश्चय किया है, आपकी समाजने, परन्तु उन सबके बलिदान-स्थलोका पता कैसे मालूम होगा ?"

जुगनू—"इसका उपाय भी सूझ गया है। हम केवल उनके बलिदान-स्थलो पर ही चरॉगा नही करेगे। अपितु जहाँ वे जन्मे, बढे, पढे, परवान चढे, खेले-बैठे, उठे, खाये-पिये आदि उन सभी स्थानोकी यात्रा करेगे और जो भी स्थान मिलेगा वहाँ चरॉगा करेगे।"

पतगा—"धन्य है आपकी इस नैतिक सूझ-बूझको। लेकिन भाई साहब, इतने शहीदोके स्थानो पर सबका जाना सम्भव हो सकेगा ?"

जुगनू—"अवश्य, इसका भी सरल उपाय सोच लिया है। समूचे

ससारके जुगनू अपने-अपने क्षेत्रमे हुए शहीदोके उक्त ज्ञात स्थानोमे-से किसी भी स्थानपर एक-एक हजार जुगनू मिलकर चरॉगा करेगे। इस तरह एक साथ सामूहिक रूपसे यह चरॉगा सफलतापूर्वक हो सकेगा।"

पतंगा—"अपनी चरण-रज लेनेकी आज्ञा दीजिए। आपका समाज अभिनन्दनीय है, जिसने इन उपेक्षितोकी ओर भी ध्यान दिया। अन्यथा ससारमे कौन उन्हे याद रखता है। न्योछावर होनेवाले न्योछावर हो जाते हैं और जीवित उनकी लाशो पर पॉव रखकर राज्यासीन होते हैं।"

जुगनू—"प्यारे भाई, हमे अपना कर्तव्य देखना है? दूसरे क्या करते है, हमे इससे क्या सरोकार?"

पतंगा—बेशक, नेकी कर और कुएँमे डाल इसीको कहते है। आप जन-कल्याणकी आग लिये फिरते है। आपका यह आदर्श हम सबके लिए अनुकरणीय है।"

जुगनू—"यह आपका सौजन्य है, वरना हम क्या और हमारी औकात क्या? हँसते-खेलते बलि हो जानेवाले महान् वशमे जन्म लेते हुए भी आप हमारी तनिक-सी बातकी इतनी सराहना कर रहे है। यह आपकी उच्चता और महानता है। आप हमारा उत्साह बढा रहे है। अन्यथा आप जैसे बलिदानी-वशजोके समक्ष हमारी क्या हैसियत? अच्छा, नमस्कार।"

४ अप्रैल १९५६ ई०

ताड़ और नारंगीका वृक्ष

अपने समीप शन्तरोसे लदे पेडको देखकर गगन-चुम्बी ताड बोला—
"तू कितना निरीह और तुच्छ है। बूटा-सा तेरा कद है, फिर भी इतना बोझ लादे हुए जिये जा रहा है। कोई तुझे ढेला मारता है, कोई तेरे सीनेपर चढता है, कोई तेरे अग-प्रत्यगको खीचता है। लेकिन तू सब कुछ सहन करता रहता है। तूने अपनेको क्यो इतना दीन-हीन और असहाय बना रक्खा है ? मेरी शरणमे रहते हुए भी यह दयनीय स्थिति ? आ तू मेरे समान सीना तानकर खडा हो, फिर देखूँ तेरी तरफ कौन देखता है ? देखनेवालोके नेत्र चुँधिया न जाये तो मेरा ज़िम्मा।"

नारगी-वृक्ष नत मस्तक जैसा खडा था, वैसा ही खडा रहा। जवाब उसे कुछ सूझ ही न पाया। उत्तर न पाकर ताड खीजकर बोला—"अरे तू बहुत ही ढीठ मालूम पडता है। चिकना घडा बना हुआ है, बोलता क्यो नही ?"

नारगी-वृक्षसे अब भी कुछ कहते न बन पडा तो ताड क्रुद्ध होकर बोला—"निर्लज्ज, तू बहुत घुटा हुआ मालूम होता है। तू इतना पतित हो गया है कि ऊँचे उठनेकी बात भी तू नही समझ पा रहा है। तनिक मेरी तरफ आँख उठाकर तो देख। मेरी विशालता और अपनी तुच्छ-ताकी तुलना तो कर। कहाँ मै, और कहाँ तू ?"

नारगी-वृक्ष अब भी मौन रहा। वह कहता भी क्या ? तभी वृक्ष परसे कुमरीने यह नग्मा छेडा—

जो नख़्ल[1] पुरसमर[2] है, उठाते वोह सर नही।
सरकश[3] है, वोह दरख़्त कि जिनपर समर[4] नहीं॥

---

[1]वृक्ष, [2]फलोसे भरपूर, [3]उच्छृंखल, तने हुए, [4]फल-फूल।

कुमरीके नग़मेको सुनकर ताडकी बोलती बन्द हो गई। वह सूर्य-तापसे समस्त शरीरमें खुजलाहट महसूस करने लगा तो मन-ही-मनमें कहने लगा—"काश, मैं भी नारंगी-वृक्षके समान फल-पत्तोंसे लदा होता तो सूर्यकी मारसे तो बचा होता।

७ जुलाई १९५६ ई०

शृगालोंका अधिकार

एक रात शृगाल-राजने एकत्र शृगालोसे कहा—

हमारे उपदेशामृतको पान करनेके लिए पहिले जगलके प्राय. सभी जीव आया करते थे। फिर धीरे-धीरे सख्या कम होती गई और अब देखता हूँ कि हम लोगोके अतिरिक्त कोई भी नही आता। मानो हमारा अस्तित्व ही नही रहा है।

"इसमें किसीका दोप नही, यह सब हमी लोगोकी वजहसे हुआ है।" एक वृद्ध जम्बुकने सजीदगीसे जवाब दिया।

"वह कैसे ?" शृगाल-राजने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

"हम समय-असमय, बात-बे-बात इतना अधिक बोलते रहे कि लोग ऊब उठे और तग आकर उन्होंने सुनना छोड दिया।"

वृद्ध जम्बुककी उक्त यथार्थ बात शृगाल-राजको रुची नही। वह डपटकर बोला—"किसीके ऊब जाने या तग हो जानेसे, हमे क्या वास्ता ? हमे जो विधाताने वाणीका वरदान दिया है, उसे हम यूँ सहज ही व्यर्थ नही होने देगे।'

उपस्थित शृगाल-समूहने नतमस्तक होकर उपाय पूछा तो उसने कहा—

"अब हम इतने ज़ोरसे चिल्लायेगे कि जगल तो जगल गाँवों और शहरोके लोग भी सुननेको मजबूर होगे। हम भूखो मरना पसन्द करेंगे, लेकिन बोलनेका अधिकार नही छोड़ेंगे।"

११ सितम्बर १९५६ ई०

म्युनिसिपल उम्मेदवार

हमारे पडोसमे म्युनिसिपल कमेटीके लिए एक उम्मेदवार क्या खडे हुए है कि खाना-पीना, उठना-बैठना सब हराम कर दिया है। जब देखो तब वही राग, इसके सिवाय उन्हे और कोई कार्य नही है। काफी रोज तो इनके चकमोसे जान छुडाता रहा, आखिर एक रोज धर ही लिया गया। लाचार मुँह लटकाये साथ हो लिया। कितनी ही गलियाँ-रूपी वैतरिणी पार करके छज्जू खटिकके पास पहुँचे। बिचारे छज्जू खटिक खटोलेपर बैठे हुए गुडगुडी पी रहे थे, हमारे उम्मीदवार साहब, "काका राम राम" कहके उसी टूटे खटोलेपर पँगायतकी तरफ बैठ गये और अपने राम बैठनेकी जगह न होनेसे ठुठकी तरह खडे ही रहे। छज्जू समझा कि लौण्डेको चेचकका टीका लगानेवाले आये है, इसलिए बोला—मुशीजी वा दिन तो चवन्नी दी ही थी, आज फेर आन बैठे।

उम्मेदवार साहब बोले—काका! मुन्शी नही, मै हूँ आपका गुलाम।

इतना सुनते ही छज्जू खटिक अपनी ऐनकको नाकके सिरेपर सरकाकर और एक हाथको माथेके आगे छज्जेकी भाँति लगाकर बोला—कौन... मै तुम्हे पहचान नॉय सको।

उम्मेदवार साहब बडी दीनतापूर्वक बोले—काका! मुद्दतोमे आया हूँ, इसीलिए नही पहचान सके। मेरे पिताजी तो आपके लँगोटिया यार थे, मै फर्जूमलका बेटा हूँ।

छज्जू—कौन फज्जूमल पच्चूनिया, जो हमारे मोहल्लेमे हद्द-मिच्च बेचवे आवे करे हो?

उम्मेदवार साहब खिसयानपटको सम्भालते हुए बोले—हाँ काका,

वही. तुम्हारे तो लँगोटिया यार थे, उन्हे कुछ भी कहो, पर मेरी लाज तो अब तुम्हारे ही हाथ है।

उम्मेदवार साहब जब अपना परिचय और तशरीफ लानेका सबब बता चुके तो छज्जू खटिक जरा माथेपर बल डालकर बोले —अपनी गज्जको कोई चाचा, कोई ताऊ, कोई भिनोई, कोई फूफा बना तो चलो आवे है, मतबल निकर जाने पर कोई ससुरो नॉय फटके। मनसपलट्टीने घर-घरमे नल लगवाय दिये, पर हमारे मोहल्लेमे पोखर तक नॉय बनवाई और पखानो यहाँ बनवाय दियो, जामे देशकी दुनिया धूर खाइवेको आवे है। आग लगे ऐसी मनसपलट्टीमे और कूआनमे गिरे लिम्बर।

उम्मेदवार साहब थूकको सटकते हुए बोले —काका ! जभी तो कहता हूँ कि वहाँ काबिल और अपने आदमी भेजने चाहिएँ। अगर आपने मुझे भेजा तो आपके मुहल्लेमे घर-घरमे नल लगवा दूँगा इस पाखानेकी जगह मन्दिर बनवा दूँगा।

छज्जू बोले—भैया इस चबर-चबरको तो रहने दे, जैसे भूतनाथ वैसे परेतनाथ, जो भी आवे है, बावन गजको बनके आवे है, पर हम सब जाने है, नौनकी खानमे जो भी गिरेगो नौन हो जायगो, दुनिया मतबलकी है। २०० घर हमारी जातके है, पाँच रुपैया फी वोटर जो मोय देगो वाईको हम लिम्बरीकी वोटर देगे।

उम्मेदवार साहब शर्त मजूर करके वहाँसे खिसके तो मुझसे बोले— देखा, सालेकी बाते, क्या आसमानसे बाते कर रहा था। मोरीकी ईट चौबारेपर रख दी तो देवी ही बन गई। कहते है नीचोको ज्यादा मुँह नही लगाना चाहिए, यह पाजी सब जूतेके यार है।

मै बात काटकर बोला—आपने नाहक इतनी खुशामद की, यह नुस्खा तो बहुत आसान है, चलिये आजमाकर देखे।

वह मेरा कन्धा पकडकर बोले —भाई, अब वह हवा गई; अब तो इनसे मिन्नत-खुशामदोसे ही काम लेना होगा। क्या करे मतलबके लिए गधेको भी बाप बनाना पडता है। मैंने भी अपने मतलबको कैसा चकमा दिया ?

उम्मेदवार साहबकी उक्त युक्ति सुनकर तो मै भी सोचमे पड गया। क्या मुझे भी गधा समझकर यह चकमा देनेके लिए मीठी-मीठी बाते करता है ? फिर भी मै अपने मनोभाव छिपाते हुए बोला—चकमा आपने नही, उसने दिया, रुपया आपसे पहले लेलेगे, फिर राय वहाँ जाकर आपको न भी दे तो आप उनका कुछ नही बिगाड सकते ?

वह बोले—भाई न देता तब भी मुश्किल थी। यह फिर जलकर उधरकी राय देते। अब कुछ उम्मीद तो है। दो-सौ चार-सौके लिए क्यो इन ज़लीलोको रुठाया जाय, कामयाब होजाऊँ तो सब बता दूँगा।

बात करते-करते तेलियोके मोहल्लेमे निकल गये। वहाँ ननुआ तेली अपने घरके बाहर पत्थरपर बैठकर साबुन मलकर नहा रहा था। हमारे साथी जरा दाँत निपोरकर बोले—क्यो साहब, क्या हो रहा है ?

ननुआ तेली दोनो हाथोसे मुँह पर साबुन मलता हुआ फुर-फुर करता हुआ बोला —अजीब आदमी हो, दिखलाई नही देता कि क्या कररिया हूँ ? छिट्टा पड जाँयगी तो कहोगे नमाज़ी कपडे नापाक हो गये।

मेरे सामने ही ऐसी खरी-खोटी सुननी पडेगी, उम्मेदवार साहबको यह उम्मीद न थी। फिर भी झेप उतारनेकी गरजसे बोले—हो यार पूरे चखिया, आँखोमे साबुन मले जानेसे देख नही सकते तो आवाज तो पहचान लेते। मै हूँ कल्यानसिह।

ननुआ तेली जल्दी-जल्दी आँखोमे पानीके दो चार छपके मारकर बोला—कौन कलुआ जो मेम्बरी को खडा होरिया है।

"जी हाँ, मै ही वह आपका सेवक हूँ।"

ननुआ तेली अपनी धोतीको पछाडते हुए बोला—तो आप हमारे पास किस लिए हरियान हुए हो ? हमारे यहाँसे तो खुद छीतर पनवाडी खडा हुआ है।

उम्मीदवार साहब जरा आँखे नचाते हुए बोले—वाह, लाला ! अच्छे तेली तम्बोलीको खडा किया।

घबराहट और मुहावरेके कारण उम्मेदवार साहबके मुँहसे तेली-तम्बोली निकल तो गया, पर बडे सटपटाये। ननुआ तेली फौरन् आँखे तरेरकर बोला—भाई साहब ! वहाँ तेली-तम्बोली तो जा सकते है पर, चरकटो और घसखुदोका लम्बर आना जरा मुश्किल है।

उम्मेदवार साहब बोले—रायसाहब ! तम्बोलीके साथमे महावरन आपकी जातीका नाम निकल गया। वरना मै तो खुद इस बातका कायल हूँ कि जो भी काबिल हो, वही चुना जाय, ख्वाह वह किसी भी कौमका क्यो न हो ?

ननुआ तेली धोती निचोड चुके थे, क्रोधको दबाते हुए बोले—अच्छा फिर कभी तसरीफ लाना अब तो मुझे खाना खाना है।

उम्मेदवार साहब अपना-सा मुँह लेकर आगे बढते हुए मुझसे बोले—देखा बेटा ! कैसी-कैसी कडवी घूँट पीनी पडती है। दो-दो कौडीके आदमियोकी क्योकर झिडकियाँ खानी पडती है। यह हम ही है, ऐसा-वैसा यहाँ फटक तो जाय !

मै बोला—बेशक यह आपका ही कलेजा है, जो ऐसी जली-कटी सुन लेते है। मेरे जैसा तो थूकने भी यहाँ न आवे।

वह बोले—बेटा ! अभी निमूछिये हो। देखा ही क्या है, जुम्मा-जुम्मा आठ रोजके ब-मुश्किल होगे। गरम खून है, फौरन् उबाल आजाता है। यहाँ बूढे होनेको आये, तेजी बर्ते तो कैसे काम चले ? यह भी शतरजी चाले है, गरम लोहा ठण्डे लोहेसे ही कटता है।

आगे बढे ही थे कि एक इक नेत्रहीन पण्डित जी मिल गये। मैंने समझा कि असगुन समझकर शायद यह अब घर लौट लेंगे, किन्तु वह तो पण्डितजी को देखते ही रेशाखतमी हो गये। बोले—गुरु! कहाँको? मै तो तुम्हारे ही पास जा रहा था।

पण्डितजी तो निकले ही शिकारकी तलाशमे थे। एक बटेर अनायास फँसते देख बाँछे खिल गई। उम्मेदवार साहब एक रुपया पण्डितजीके हाथमे देकर बोले—महाराज! ऐसा कोई अनुष्ठान करो कि मुखाल-फीन (प्रतिपक्षी) सब मुँहकी खाये और तुम्हारे चेलेका ही बोलबाला हो।

पण्डितजीके तो मुँह खून लगा हुआ था। एक रुपयेसे क्या खाक राजी होते? अत उसको अण्टीमे लगाते हुए बोले—मैंने तो तुम्हारे बिना कहे ही जन्मपत्र अवलोकन किया था, किञ्चित् शनिदेव क्रुद्ध है। जो है, सो वह कछ उपाय करनेसे शान्त हो जायँगे। भाग्याकाश आपके अनुकूल करनेमे हमें ठाकुरजीके अनुग्रहसे कुछ देर नही लगती। केवल १२ लाख गायत्रीके मन्त्रोका पाठ करना है, यह कार्य १२ ब्राह्मण एक मास पर्यन्त कर सकेंगे, इसका एक रुपया दिवसके हिसाबसे ३६० रु० और दो सौ रुपये सामग्रीमे और ५० ब्राह्मणोको भोजन करानेमे अनुमान १०० रुपया आपका व्यय होगा। मेरी चिन्ता न कीजिये, सफलता होने पर मुँह मीठा कर लूँगा।

पण्डितजीसे ब-मुश्किल जान छुडाकर आगे बढे तो एक मैट्रिकुलेशन फेल बाबूजी मिले, जो अगले वर्ष कहतकी वजहसे चमारसे ईसाई हो गये थे, और अब वह शायद किसी खैराती होस्पिटलमे कम्पाउण्डर थे। अंग्रेजी ढगसे दुआ-सलाम होने पर बाबूजी पतलूनकी जेबमे हाथ डाल कर बोले—हम नही पहिचानें सकटा टुम कौन है?

उम्मेदवार साहब सुनकर कुढ गये, फिर भी शान्त स्वरसे बोले!

हाँ, साहब! अब आप क्यो पहचानने लगे ? बडे आदमी होने पर छोटी चीज दिखाई ही नही देती। इसमे आपका क्या कुसूर है।

बाबू साहब सिगरेटका धुआँ उडाते हुए और भी अकडकर बोले—'टुम किस माफिक बोलेना मागटा है ? मालूम होटा है टुम किसी मरीजका सिफारस लेकर आने सका है।'

उम्मीदवार साहब सकपकाकर बोले—मै मरीजके लिए नही, खुद अपनी सिफारिश लेकर जनाबकी खिदमतमे हाजिर हुआ हूँ। मै म्युनिसिपल कमेटीकी मेम्बरीके लिए खडा हुआ हूँ। मुझे अफसोस है कि आप जैसे जहीन और तजुर्बेकार अभी कम्पाउण्डर ही बने हुए है। काश मेरा बस चलता तो डाक्टर कभीके बन गये होते।

उम्मीदवार साहबका निशाना ठीक बैठा। उक्त किरटीनसाहब कमेटीके होस्पिटलमे तो थे ही, फूलकर कुप्पा होगये। खुशीमे आँख नचाकर बोले—"अरे साहब! अब काबिलियत और तजुर्बेको कौन देखता है, सार्टीफिकेटको देखते है, चाहे इल्मियत खाक भी न हो। आप जैसे कद्रदाँ वहाँ जाये, तब हैवानोकी जगह इन्सानोकी पूछ हो। आप इत्मीनान रखिये, तन-मनसे आपकी कोशिश करूँगा।"

मै हैरान था कि यह किरटीन इतनी जल्दी हिन्दी कैसे बोलने लगा ? काग तो कोयल-वाणी बोलते कभी देखे न सुने। आगे चले तो एक खद्दर-धारी सज्जन मिले। मालूम हुआ कि सन् ३०मे गाधीकी आँधीकी लपेटमे तीन महीनेकी काट आये थे, और जुलूसमे घुसकर तमाशा देखनेके उपलक्षमे, पीठमे पुलिसकी गोली भी खा चुके थे। गालोमे झुर्रियाँ पड जानेके कारण युवावस्थामे ही बुजुर्गीका प्रभाव टपका पडता था और आँखे अन्दर धँसी होनेके कारण दार्शनिक भी प्रतीत होते थे। अत मै भी 'वन्देमातरम्' कहकर उनके समीप बैठ गया।

बातचीतका सिलसिला जमाते हुए उम्मेदवार साहव वोले—महाशयजी आप क्यो नही खडे होते ? इस तरह उदासीन रहनेसे क्योकर काम चलेगा ? टोडियोका तो वहाँ तक पहुँचना वहुत ही ख़तरनाक साबित होगा।

महाशयजी अपने चश्मेको धोतीसे पोछते हुए बोले—भला मै वहाँ क्योकर जा सकता हूँ ! देशके झगडोसे ही अवकाश नही मिलता; फिर वहाँ जाना कैसा ?

मै वोला—महाशयजी आजकल तो देशमे कोई काम हो नही रहा है। काग्रेसने तो रचनात्मक प्रोग्राम स्थगित कर रक्खा है। फिर आपको क्या ऐतराज है ?

महाशयजी जरा अभिमानसूचक स्वरमे वोले—कॉग्रेसका काम लाख वन्द हो, परन्तु जिनके आँखे है, वह जानते है कि करनेवाले करते ही है। ऐसे-वैसे काम वताये थोडे ही जाते है। हम तो वलवटेर (वोलिण्टियर) है, चाहे पकेटिग (पिकेटिग) करालो, चाहे किन्कलाब (इन्कलाब) के नारे लगवालो, और चाहे विलोटिग (काग्रेसवुलेटिन) विकवालो, सवके लिए तैयार रहते है।

कही सचमुचमे ये उम्मेदवारीमे नाम न लिखादे इस डरसे उम्मेदवार साहव ज़रा थपकते हुए बोले—बेशक महाशयजी, सच्चा कॉग्रेसी अगर कोई देखा तो आपको देखा। दुनिया इधरसे-उधर होगई मगर आप टस-से-मस न हुए। पर यूँ टालनेसे काम नही चलेगा, या तो आप किसीको अपना करले, या किसीके हो रहे। या तो आप खडे हो, मगर अपने चान्स देख लीजिए, अन्यथा मेरी मदद कीजिए। विरोधी हमारे इलाकेसे कामयाव हो जाय, यह मै वर्दाश्त नही कर सकता। देखिये आपके सेवकके शरीरपर तो क्या, घरभरमे विलायतीका एक तार नही पा सकता। मेरे घरसे बीमार

रहनेपर भी रोज चर्खा चलाती है। सत्याग्रहके दिनोंमे मैंने खुद गाधी-नमक खरीदा था, ताकि कोई गिरफ्तार करे, मगर हमारे ऐसे भाग्य कहाँ ? काँग्रेसका ऐसा शायद ही कोई जल्सा होता होगा, जिसमे मैं न जाता हूँ। भई, दिखावट और ढोल पीटना तो हमे आता नही, चुपचाप न जाने क्या-क्या कर दिया। कई रोज तो पुलिस इन्सपैक्टर रात भर मकानके आस-पास घूमता रहा। तुम्हे तो सब मालूम ही है।

महाशयजी उम्मेदवार साहबसे एकआध रुपया लेकर नीचा देख चुके थे, अत हाँमे-हाँ मिलाते रहे, और अन्तमे बोले—आप विश्वास रखिये ! जी जानसे आपके लिए प्रयत्न करूँगा।

महाशयजीको बातोके तिलिस्ममे फाँसकर और नये शिकारकी तलाशमे चले कि ट्राममे जाते हुए एक आबनूस चेचक मुँह दाग कुल्लेदार साफा पहने हुए व्यक्तिको जो देखा तो उम्मीदवार साहबने पुकारा:—क्यो साहब ! क्या यूँ ही अलगकी अलग निकल जाओगे।

कुल्लेधारी सज्जन ट्रामसे उतरते हुए बोले—भाई यूँ ही क्यो निकल जाएँगे कोई हम अहसान फरामोश थोडे ही है ?

मुझे देखकर ज़रा झिझके, मगर उम्मेदवार साहबके यह कहनेपर कि यह तो अपने घरका ही आदमी है वह सज्जन बोले—'भाई यह तुम्हारा ही दम था जो यहाँ गाधी-गिरोह मिट गया। और हम यहाँ बा-इज्जत रहते रहे। वरना समुद्रमे रहकर मगरसे बैर कैसा ? तुम उस आडे वक्त काममे आये तो हम आज हवलदारसे सब-इन्सपैक्टर बने हुए है। बडा साहब तो मुझसे इतना खुश है कि अगर मै मैट्रिक पास भी होता तो मुझे किसी छोटे-मोटे जिलेका कोतवाल बना देता। बाल-बच्चे पल रहे है, भैया तुम्हारे बाल-बच्चोकी रोज खैर माँगते है। आधी रातको कहो तो तुम्हारे लिए मैं अपनी जान छिडक दूँ।'

उम्मेदवार साहब आत्म-प्रशसा सुनकर फूले न समाये। फिर भी तहजीबके लिहाजसे बोले—अजी, मैं किस काबिल हूँ, यह आपका हुस्नेजन हैं जो इज्जत-अफजाई कर रहे है। मुझे तो सन्तोप तब होगा जब आप कोई षड्यन्त्र पकड सकेंगे।'

थानेदार साहब बात काटकर बोले—आपका दम गनीमत चाहिए। सब हो जायेगा। अब तो आप ताबेदारको कोई हुक्म फरमाइये।

उम्मेदवार—अजी हुक्म क्या? बस यही अर्ज हैं कि मुहल्लेके ये दो-चार गुण्डे जो ऊधम मचा रहे हैं, इन्हे जरा सीधा कर दीजिए और इस इलाकेकी जरा नीच जातको भी काबूमे ले आइये, कमबख्त सीधे मुंह बात भी नही करते।

थानेदार:—आप इत्मीनान रखिये इन बदमाशोको तो मैं दफा १०९ (बेकारी)मे गिरफ्तार किये लेता हूँ और नीचोंके यहाँ चोरी या औरत भगाये जानेके शुबहेमे तलाशी लिये लेता हूँ। साले सब ठण्डे हो जायँगे।

सुबहसे निकले हुए रात हो गई थी। मारे भूखके पेटमे चूहे कबड्डी खेलने लगे थे। ब-मुश्किल जान छुडाकर घर आया तो उम्मेदवारोकी इस गिरगट पॉलिसी पर सोचने लगा। हे प्रभो! ऐसे ही मायाचारी सेवाका दम भरकर वहाँ जाते हे। मै सोच ही रहा था कि वोट किनको दूँ कि आई हुई वोटरीकी पर्चीसे मेरे देखते-देखते श्रीमतीजीने लडकेकी छी-छी पोछकर फैंक दी।

जनवरी १९३४ ई०

अहिंसा और कायरता

अहिंसा और कायरतामे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। अहिंसा धर्म है, कायरता पाप है। अहिंसा सम्यक्त्व और कायरता मिथ्यात्व है। अहिंसा और कायरतामे उतना ही अन्तर है जितना कि पूर्व और पश्चिममे। भव्य और अभव्यमे, प्रेम और मोहमे। अहिंसा विश्वका शृगार है, कायरता कोढ है।

अहिंसा और कायरता इतनी विरोधी स्वभावकी होने पर भी दोनो जुडवाँ वहने है। अन्तरगमे एकके अमृत और दूसरीके हलाहल भरा हुआ है, पर ऊपरी वेश-भूषा, और रग-रूपमे तनिक भी अन्तर नही है। हम क्या, वडे-वडे ऋषि-महर्षि, धीमान्-वलवान इस रूप-साम्यके कारण धोखेमे फँसते रहे है।

सीता-हरणके समय इसी कायरताने सीताको मौन-सत्याग्रहकी सीख दी। जब सीताके कानमे अहिंसाने कहा कि "अन्यायको चुपचाप सहन कर लेना अन्यायको सीचना है। अन्यायीको समाप्त कर देनेसे धार्मिकोकी रक्षा होती है, धर्मकी वृद्धि होती है।" तभी कायरताने सीताको मत्र दिया—"रावणके नाशका विचार मनमे लाना भी पाप है, आत्मा अमर है, अमूर्त है, न इसे कोई मार सकता है, न अपवित्र कर सकता है। शरीर जन्मत अशुचि है, नाशवान है। जिसके हाथसे भी इसका नाश होना भाग्यमे लिखा है होकर रहेगा। कर्मोकी इस अमिट रेखाको कोई मिटा नही सकता। फिर इतना रोष क्यो? रोष तो आत्माका घातक है। आत्माका जव कोई घात नही कर सकता, तव उसका शत्रु भी कोई नही। ससारमे आकर शत्रु-मित्र, अपने, परायेकी धारणा वना लेना ससार-भ्रमणको वढाना है।

अतः तू शुद्ध हृदयसे इसे क्षमा कर। इसके अपकारका भाव भी मनमे लाना पाप है।"

कायरताके वहकावेमे भोली सीता आ गई। उसे क्या मालूम कि ये राक्षसी केवल अहिसाका स्वर और रूप लिये घूमती है, अन्तरग तो हलाहलसे ओत-प्रोत है। व्याघ्रसे सावधान रहा जा सकता है, किन्तु गो-मुखी व्याघ्रसे कब तक बचा जा सकता है, कभी-न-कभी उसके फदेमे फँसना सम्भावनासे खाली नही।

राक्षसी कायरताने सीताको जब पूरी तरह सम्मोहित कर लिया तो अहिंसा निरुपाय होकर भागी हुई जटायुके पास पहुँची और कानमे चुपके-से बोली—"जटायु! तेरे नेत्रोके सामने एक अबलाका हरण हो रहा है, और तू निश्चेष्ट बैठा हुआ है। शीघ्रता कर, पूरे वेगसे रावणपर झपट्टा मार, नही तो वह अबलाको ले जायगा। ससारमे पुरुषत्वको कलक लग जायगा, धर्मकी मान-मर्यादा नष्ट हो जायगी।"

जटायु बोला—"माँ, अच्छा हुआ तुम उपयुक्त अवसर पर आ गईं। मैं धर्म-अधर्म, कर्तव्य और अकर्तव्यके जालमे फँसकर कर्तव्यविमूढ-सा हो रहा था। मन आततायी पर टूट पड़नेको होता था, परन्तु समझ कह रही थी—मूर्ख! जिस पर अन्याय हो रहा है, वह स्वय शान्त और क्षमाशील है, तब तू क्यो मक्खी-सी जान लेकर हाथीसे लडनेको सोच रहा है।"

अहिसा बोली—"जटायु! अन्यायका प्रतिकार करनेके लिए बलाबल-का विचार छोडकर आदर्शकी ओर दृष्टि रखनी चाहिए। ससार अनन्त बार उजडकर फिर हरा-भरा हो जायगा, किन्तु आदर्श मिटा तो यह फिर जीवित नही किया जा सकेगा। आज तुम सीताका हरण देखते रहे तो भविष्यमे फिर कोई पुरुष अबलाओकी रक्षाको नही उठेगा और बिचारी अबलाएँ चुपचाप आँसू बहाती हुई आततायियोके साथ जानेको बाध्य हुआ

करेगी। जटायु! वह देख रावण चला, शरीरमे एक रक्तकी बूँद रहने तक अन्यायका प्रतिशोध ले। तू निश्चय ही इस धर्म-कार्यमे मरेगा, पर मै तुझे अमर कर दूँगी। भावी सन्तान अपने रक्तसे तेरा अभिषेक किया करेगी।"

जब दुर्योधन द्वारा द्रौपदीका चीर-हरण होने लगा तो इस मायावी कायरताने पाँचो पाण्डवो, धृतराष्ट्र, भीष्म, 'द्रोणाचार्य वगैरहको कुछ ऐसी पट्टी पढाई कि अन्यायको निर्विकार नेत्रोसे देखते रहना ही सचमुच उन्होने धर्म समझ लिया। रोती बिलखती द्रौपदीके पास भी यह कुलटा सान्त्वना देनेके बहाने पहुँची और बोली—"पाञ्चाली! व्यर्थमे क्यो सक्लेशित परिणाम करके कर्मोका बन्ध करती है। तेरी आत्मा शरीरसे भिन्न है। आत्मा एक दिवस परमात्मा बनकर रहेगी। यह पुद्गल ही उसके विकासमे बाधक हो रहा है। तू इसका मोह छोड। यह शरीरका मोह ही ससारके भ्रमणका कारण है। इस मोहके नाशका इससे उपयुक्त अवसर और क्या मिलेगा? तू निश्चल भावसे खडी हो जा। कामुक दुर्योधन **'नव द्वार-बहें घिनकारी'** शरीरको देखना चाहता है तो देखने दे। जब तेरा निश्चय नयसे शरीर है ही नही, तब दुर्योधनका विरोध करके उसके हृदयको दुखाना महापाप है।"

द्रौपदीने सती-तेजसे चाण्डालीकी ओर देखा तो फिर इसे बोलनेका साहस न हुआ। उधर अहिसाने सती नारियोसे द्रौपदीपर आनेवाली विपदा बतलाई तो सब ओठ काटकर कौरवोका नाश करनेको प्रस्तुत हो गई, किन्तु अहिंसाकी यह विवशता दिखाने पर 'यदि द्रौपदीकी रक्षाको नारी-जाति सन्नद्ध हो उठेगी तो पाण्डवोको फिर ससारमे मुँह दिखानेको जगह नही रहेगी। भीष्मका जीवन भरका तप नष्ट हो जायगा। द्रोणाचार्यके वीरत्वमे कालिख लग जायगी। पुरुषत्वका पानी नालीमे वह जायगा।

नारियाँ भविष्यमे पुत्र जननेको पाप समझने लगेगी।' वमुश्किल शान्त हुई और बा-आवाज बुलन्द कहा—"ससारके नराधमो! कान खोलकर सुन लो, जब तक नारीमे सती तेज बाकी है, उसकी धारको कोई छू नही सकता। हम सबके वस्त्र द्रौपदीके लग जायेगे, कामुक उसके शरीरका एक रोम भी नही देख सकेगा। जो दुर्योधन आज रक्तस्राव होती हुई द्रौपदीको देखना चाहता है। हमारी बहन 'गदा' एक रोज़ उसका रक्त बहाकर अवश्य दिखायेगी।"

द्रौपदीको विराटके दरबारमे कीचकने लात मारी तो वहाँ भी न जाने यह मायावी कायरता आँख मारकर क्या समझा गई कि द्रौपदी बिलखती रही, सिसकती रही और दरबारके सारे योद्धा जीवन्मुक्त-से बने बैठे रहे। यह भीमको वहाँ न पाकर उसे पट्टी पढानेको खोजने निकली तो वहाँ अहिसा पहिले ही भीमको कर्तव्यका बोध करा चुकी थी, कायरता सिर पीटकर रह गई और कीचककी लाश पर खूब दुहत्तड मारकर रोई।

महाभारत-युद्धसे पूर्व कृष्णको भी झाँसा देनेसे यह बहुरूपिणी बाज़ न आई। उसे कौरवोसे सन्धि करनेके बहाने उनकी चापलूसी करनेको विवश कर दिया। कायरताका यह अमोघ अस्त्र कृष्णपर भी चलते देख अहिसाको रुलाई आ गई। वह आँखोमे आँसू भरे, बाल खोले द्रौपदीके रूपमे कृष्णके मार्गमे नतमस्तक खडी हो गई। कृष्ण सब कुछ समझ गये। साकेतिक भाषामे बोले—"बहन! मुझसे ऐसा कार्य कभी न होगा, जिससे धर्म-मर्यादा नष्ट हो जाय, अन्यायियोको प्रश्रय मिले और धार्मिक आपदाओमें पडे।" कृष्णके वचन सुनकर अहिसाके नेत्रोसे आँसू झर-झर बहने लगे। उनमे कृष्णने पढा—"भाई! इस अर्जुनको सम्भाले रखना, ऐसा न हो कि यह ऐन मौके पर उसके झाँसेमे आ जाये।" कृष्णने आश्वासन देकर प्रस्थान किया।

भगवान् महावीरके शासन-कालमे कायरता सूखकर कॉटा हो गई थी। पर ससारमे मूर्खोकी कमी नही, बुद्धिमानोकी कमी है। भगवती अहिंसा समझकर इसको नन्दने प्रश्रय दे दिया। सिकन्दर भारत-वासियोको रौंदता रहा, पर वह मूर्ख उस दुष्टाके रूप-रग पर ही मुग्ध हुआ बैठा रहा। तब लाचार अहिंसा चाणक्य और चन्द्रगुप्तके पास दौडी आई। अहिंसा-की बात सुनी तो वे भौचक-से रह गये। "न जन-बल, न बुद्धि-बल, न शस्त्र-बल, मार्गके भिखारियोको यूनानी और नन्द-साम्राज्यको मूलोच्छेद करनेका आदेश! भगवती अहिंसा, बोलो ना, हम किस प्रकार अपनी भक्तिकी परीक्षा दे।"

अहिंसाने सन्तोषकी श्वास लेकर कहा—"वत्स! मनुष्यमे धैर्य और सकल्प हो तो वह सब कुछ कर सकता है। रावणके नाशका सकल्प करते समय रामके पास क्या था? महावीर गुरुडमवादका मूलोच्छेद करने निकले तो उनके पास क्या था? दुनिया झुकती है कोई झुकाने वाला चाहिए।"

प्रखर बुद्धि चाणक्य और चन्द्रगुप्तको यह सकेत पर्याप्त था।

इसी कायरताने मौर्य-साम्राज्यको नष्ट कराया और इसी मायावीने पृथ्वीराजकी बुद्धि नष्ट कर दी। मुहम्मद गोरी ५०० गायोको आगे करके अपनी सेनाको लेकर भारतको रौंद रहा था और पृथ्वीराज गौ-हत्याके भयसे आक्रमणकारियोको रोकनेका प्रयास नही कर रहा था, उसे भी अहिंसा-ने हर चन्द समझाया :—

"पृथ्वीराज! सारे भारतकी आँखे तुझ पर लगी हुई है। उठ, और इन मायावी गायोको मार। इनके बचानेका अर्थ है निरन्तर करोड़ो गायोका घात, धर्म-स्थानोका विनाश, सतीत्व-हरण और लक्ष्मीका प्रस्थान। तेरी इस अकर्मण्यता और नकली दयाके कारण भारत सदैवको गर्तमे गिर

जायगा। परतन्त्र भारतीय तेरे इस दुष्कर्मके कारण सदैव आँसू बहायेंगे।"

अहिंसा लाख-लाख गिडगिडाई मगर पृथ्वीराजपर खाक असर न हुआ। जो अपने ६ विवाहोके लिए लाखो नर-हत्याएँ कर चुका था, वही ५०० गायोके लिए साक्षात् धर्म-मूरत वनकर बैठ गया।

जो अपने देश, कुल, मान-मर्यादाका विनाश चाहते हैं, वे भले ही इस लुभावनीके फेरमे पडे रहे, परन्तु जो मानवताकी रक्षा चाहते हैं, वे भगवती अहिंसाका शुद्ध रूप समझे, उसकी समयकी पुकारको पहचाने।

जनवरी १९४७ ई०

कायरताका जनक

भय कायरताका जनक है। उपनिषदोमे एक कथा आती है—'एक-बार नचिकेता अमर होनेका उपाय स्वय यमराजसे पूछने गया।' नचिकेताका यह अभूतपूर्व साहस देखकर यमराज सहम-सा गया। उसे नचिकेतापर हाथ डालनेका साहस नही हुआ, और उसे विवश होकर बताना पडा कि—'भयको जीतनेसे अमरत्व प्राप्त होता है, भयका नाम ही मृत्यु है।'

कथा पढी तो मनको न लगी। भय जीतनेसे मृत्यु क्यो नही आयेगी ? भय और मृत्यु एक ही पर्यायवाची शब्द कैसे हो सकते है ? उस समय इस रूपकका अर्थ कुछ भी समझमे नही आया ? उन्ही दिनो महाभारतके स्वाध्यायमे प्रसग आया कि महाभारतमे जूझ मरनेको १८ अक्षौहिणी सेना सजी खडी है और भीष्म पितामह कौरवोको बतला रहे है कि दोनो पक्षोमे कौन-कौन योद्धा महारथी और कौन-कौन रथी है। उन्होने अर्जुन, भीम, दुर्योधन, द्रोण, कर्ण आदिको महारथी और द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको रथी कहा, तो लोगोके आश्चर्यकी सीमा नही रही। वे विनीत भावसे बोले—"पितामह ! हम तो अश्वत्थामाको आपके बताये इन महारथियो-से भी अधिक पराक्रमी और रण-कौशल पारगत समझते है और आप उन्हे महारथी भी नही समझते।"

पितामहने सहज स्वभाव उत्तर दिया—"केवल बल और रण-कौशल ही महारथी होनेके लिए पर्याप्त नही। जो गुण मनुष्यको अजेय बना देता है, वह गुण यदि सैनिकमे न हो तो वह जीती बाजी भी हार जाता है और मुझे कहते हुए दु ख होता है कि अश्वत्थामामे वह गुण नही है। वह भयको जीतकर निर्भीक नही हो पाया है।"

पितामहकी उक्त भविष्यवाणी आगे चलकर सोलहो आने सत्य सिद्ध हुई। जब कौरव-पक्षके समस्त महारथी काम आ गये, केवल अश्वत्थामा पर विजयकी आशा केन्द्रित हो गई। और जब रण-कौशल दिखलाकर कीर्तिवरणका उपयुक्त अवसर आया, ठीक उसी अग्नि-परीक्षाके समय अश्वत्थामा रण-क्षेत्रसे भाग निकला। इसी एक भगोड़ेने कौरवोकी ११ अक्षौहिणी सेनाके बलिदानको धूलमें मिला दिया।

तब आया उपनिषद्‌की कथाका मर्म समझमे। जो निर्भय होकर जूझ मरता है, वह मरकर भी अमर रहता है और जो भयसे भाग खडा होता है, वह जीवित रहते हुए भी मर जाता है।

हिन्दू-धर्मानुसार अश्वत्थामा अमर था। फिर भी वह प्राणोंके मोहसे भाग निकला और कहते हैं आज भी वह अपना कलकी जीवन लिये छद्म वेशमे जगलो, पर्वतो और आबादियोमे घूमता फिरता है, किन्तु एक भी ऐसा मूर्ख आदमी नही जो अश्वत्थामा-जैसा अमरत्व एक रोजको भी चाहता हो। अपितु ऐसे जीवनसे वीर-गतिको प्राप्त होनेवाला क्षणभरका जीवन कही अधिक श्रेष्ठ समझता है।

भय कायरताका ही नही, अनेक पापोका जनक है। पापी मनुष्य सर्वत्र भयभीत रहता है। भय मिथ्यात्व है, अभय सम्यक्त्व है। सम्यक्त्वी ही परतन्त्रताके बन्धन काटनेका अधिकारी है। मिथ्यात्वी सासारिक आपदाओको भुगतनेके लिए लाचार है।

भयके कारण ही मनुष्य ससारमे मिथ्यात्व करता है, बड़े-से-बडा अनर्थ करता है। भयभीत मनुष्य सकटके समय स्वजनोको छोडकर भाग खडा होता है। बहन-बेटियोकी लाज लुटती हुई निर्विकार नेत्रोसे देख सकता है। देश और समाजको भट्टीमे झोक सकता है, केवल अपने प्राण

बचानेके लिए वह ससार पर बडी-से-बडी विपत्ति लादनेका कारण बन सकता है।

भयके कारण ही यशवन्तसिह ओरगजेवसे जीती हुई बाजी हार गया। भयके कारण ही १८५७ के विद्रोहका पासा पलट गया। मुगल वादशाह बहादुरशाह और सेनापनि बने हुए युवराज जनानेमे छिप गये।

अत हमे सबसे पहले कायरताके इस उद्गमको समुद्रके उदरगह्वरमे डाल देना चाहिए। आजसे जो बहुएँ अपने बच्चोको सिपाही या हव्वाका भय दिखाती दीख पडे, उनकी जवान चीमटेसे दाग दो। जो पण्डित या उपदेशक चेतनता और जागरणका उपदेश न देकर मनुष्योको शुष्क निरुप-योगी बाते बताकर अकर्मण्य बनानेका घोर पाप करे, उसको काला मुँह करके जगली पशुओके सामने फेक आओ। बडी-बूढियोको भूत-प्रेतकी कहानियाँ मत सुनाने दो। जो बच्चे किसी स्थानमे जाते हुए भयका बहाना लेकर जानेसे इन्कार करे, उन्हे वहाँ लेजाकर बाँधकर अकेला छोड दो, या डडा देकर उनसे कहो कि जहाँ भय दिखाई दे, वही उसको लाठी मारो। जो लडके हँसी-हँसीमे भयका नाट्य करे, उनके कान गरम कर दो। डरपोक मित्रोको साहसी न बना सको तो तुरन्त उनका साथ छोड़ दो।

अपने-अपने गाँवोमे साप्ताहिक ऐसी सभाओका आयोजन करो, जहाँ एक घण्टा साहसिक कहानियाँ सुनाई जाएँ, जानपर खेलनेवाले जीवटोके पराक्रमशाली जीवन-चरित्र पढकर सुनाये जाये, राजपूतोकी आन-बान, महिलाओकी सतीत्व-रक्षा, देशभक्तो के बलिदान और शूर-वीरो, धर्मवीरो, कर्मवीरो, दानवीरोके कार्योका ऐसी ओजस्वी और मर्मस्पर्शी भाषामे वर्णन करो कि तुमको कायर समझकर टूट पडने वाले आततायियोको अपने

जीवन का खतरा दिखाई पडने लगे। आततायियोके हाथसे गाय-भेडोकी तरह मरना मनुष्यताका कलक है। विपत्तिके समय, आततायियोके आक्रमणके समय क्या करना चाहिए ? धर्म-शास्त्रोमे सब कुछ लिखा हुआ है। मौत जब चौखट पर आ ही खडी हो, तब हँसते हुए उसके स्वागत करनेको समाधि-मरण और वीरतापूर्वक भिड जानेको वीर-गति कहा है। साथ ही रोते-बिलखते प्राण देनेको रौरव नरकका कारण भी बताया है। भयभीतको उसके सगे सबधी भी घृणाकी दृष्टिसे देखते है और निर्भीक वीरकी शत्रु भी सराहना करते है।

जनवरी १९४७ ई०

मनुष्य और साँप

सुनते है डायन भी अपने-परायेका भेद जानती है। वह कितनी ही भूखी क्यो न हो; फिर भी अपने बच्चोका भक्षण नही करती। सिह-चीते, घडियाल-मगरमच्छ, बाज-गरुड आदि क्रूर हिसक जानवर भी सजातीयोको नही खाते। कहते है साँपिन एकसौ-एक अण्डे प्रसव करती है और प्रसव करते ही उनमे-से अधिकाश खा लेती है या नष्ट कर देती है। हमारा अपना विश्वास है कि वह क्षुधा-शान्त करनेको सन्तान-भक्षण नही करती, अपितु लोक-रक्षाकी भावनासे प्रेरित होकर ही विपैली सन्तानके भक्षणको बाध्य होती है।

क्रूर-से-क्रूर पशु-पक्षी भी अपनी सीमाके अन्दर ही केवल क्षुधा-पूर्तिके लिए विजातीयोका शिकार करते है, किन्तु, हजरते-इन्सानसे कुछ भी वईद नही। ये जल-थल-नभ सर्वत्र विश्व-सहारको पहुँचे है। आवश्यक-अनावश्यक ससारको कष्ट देते है। शत्रुका तो सहार करते ही है, मित्रो और परोपकारियोको भी नही छोडते। जो काम शैतान करते हुए लजाये उसे ये मुसकराते हुए कर डालते है।

ससारमे शायद मछली और मनुष्य ही केवल दो ऐसे विचित्र प्राणी है जो सजातीयोको भी नही छोडते। सम्भवत जैनशास्त्रोमे इसीलिए इन दोनोके सातवे नरकतकके बन्ध होनेका उल्लेख मिलता है, जबकि अन्य क्रूर-से-क्रूर पशु-पक्षियोके प्राय छठे नरक तकका ही बन्ध होता है। ईमानकी बात तो यह है कि मनुष्यकी करतूतोकी तुलना किसी भी जानवरसे नही की जा सकती। यह अपनी यकताँ मिसाल है।

मनुष्य अपने सजातीय यानी मनुष्यका सहार करनेका आदी है। फिर भी भारतके हिन्दुओके अतिरिक्त प्राय. सभी मनुष्योने देश, धर्म, समाजकी

रेखाएँ खीच ली है। और इन रेखाओके अन्दर रहनेवाले एक दूसरेका सहार करना तो दूर, अनिष्ट करना भी नही सोचते। परन्तु भारतके हिन्दू उच्चवर्णोत्पन्न उक्त मर्यादामे नही बँधे है। मुक्तिके इच्छुक इस बन्धनसे मुक्त है। न इनसे अपने देशवासी वच पाते है, न सहधर्मी और न सजातीय।

क्या किसी देशमे, समाजमे अपनी वहन-वेटियोको, वन्धु-बान्धवोको शत्रुओके हाथोमे सौपते हुए किसीने देखा है ? न देखा, सुना हो, तो भारतमे आकर यह पैशाचिक लीला अपनी आँखोके सामने होती देख लो। ये लोग गायका रस्सा तो कसाईसे छीनते है, पर, वहन-वेटियोका हाथ स्वय उनके हाथोमे पकडा देते है। कुत्तो-विल्लियोको तो अपने साथ सुलाते और खिलाते है, पर अपने सजातीयो-सहधर्मियोसे घृणा करते है। साँपोको दूध पिलाने और चिउँटियोको शक्कर खिलानेके लिए तो ये लोग जगल-जगल घूमते है, पर अपहृत महिलाओके उद्धारके वजाय उनकी छायासे भी दूर भागते है। चिडीमारके हाथोसे तोते-चिडियाओका तो रुपया देकर उद्धार करते है, पर आततायियोके चगुलमे फँसी, रोती-विलखती नारियोको मुक्त करना पाप समझते है।

यूँ तो आये दिन इस तरहके काण्ड होते ही रहते है, परन्तु सीनेपर हाथ रखकर एक घटना और पढ लीजिये—

साम्प्रदायिक उपद्रवोके परिणामस्वरूप अन्यत्रकी तरह देहरादूनमे भी साम्प्रदायिक सघर्ष हुआ। उसी अवसरपर चार बिधर्मी हाथोमे तलवार लिये एक ब्राह्मणके घर पहुँचे। और ब्राह्मणसे जाकर बोले कि तुम सकुटुम्ब हमारा मजहव अख्तियार करो और अपनी जवान लडकीकी हममे-से एकके साथ शादी कर दो, वरना हम सबको जानसे मार डालेगे।

ब्राह्मण यह दृश्य देखकर घबराया और लडकी देने तथा धर्म-परिवर्तन करनेको प्रस्तुत हो गया, किन्तु जब वह अपनी युवती कन्याका

हाथ उनमेंसे एकके हाथमे देने लगा तो लडकीने फुर्तीसे उससे तलवार छीन-कर पलक मारते ही दोको खुदागज भेज दिया; बाकी दो भाग गये। वीर लडकीके साहसके कारण ब्राह्मण और उसका कुटुम्ब तो धर्म-परिवर्तनसे बच गये, लेकिन उस वीरागनाको खूनके अपराधमे पुलिस पकड़कर लेगई। भाग्यसे देहरादूनका कलक्टर सहृदय और गुणज्ञ अंग्रेज था। उसे जब वास्तविक घटनाका ज्ञान हुआ तो उसने वह मुकदमा किसी तरह अपनी अदालतमे ले लिया और दो-चार पेशियोके बाद लडकीको निरपराध घोषित करके उसको लिवा जानेके लिए उस ब्राह्मणके पास इत्तला भेजी तो ब्राह्मणने कहलवा भेजा कि चार-पाँच रोजमे बिरादरीसे पूछकर बतला सकूँगा कि लड़कीको घरपर वापिस ला सकता हूँ या नही। चार-पाँच रोज़के बाद ब्राह्मणने लिख दिया कि—'लडकीको घरपर वापिस लानेकी बिरादरी इजाज़त नही देती, इसलिए वह मजबूर है।' इस उत्तरको पढकर कलक्टर बहुत हैरान हुआ और ब्राह्मणकी इस निष्ठुरताका कारण उसकी समझमे नही आया। लाचार उसने वहाँके आर्य-समाजियोको वह लडकी सौंपते हुए कहा—"यदि यह लडकी इगलिस्तानमे उत्पन्न होकर ऐसा वीरतापूर्ण कार्य करती तो अग्रेज इसकी मूर्ति बनवाकर स्मृति-स्वरूप किसी वाटिकामे स्थापित करते और जो स्त्री-पुरुप वहाँसे पास होते उसको आदर देते, किन्तु यह हिन्दुस्तान है, यहाँका हिन्दू पिता अपनी लड़कीको शाबासी देनेके बजाय उसे अपने साथ रखना भी पाप समझता है।"

मालूम होता है कलक्टर साहबको हिन्दुस्तान आये थोडे ही दिन हुए होगे। अन्यथा देहरादूनके उस ब्राह्मणकी इस करतूतसे वे व्यथित नही हुए होते! उन्हे क्या मालूम कि यहाँ ऐसे ही सन्तान-घातक और समाज-भक्षियोका प्राबल्य है। ऐसे ही पापियोंके कारण भारतके १४-१५ करोड

हिन्दू विधर्मी बने है। फिर भी इनकी यह लिप्सा अभी शान्त नही हुई है और दिन-रात अपने समाज और वशका घात करनेमे लगे हुए हैं।

"यशोदाने अछूत कुएँसे पानी पी लिया, धनीराम सिघाईके तागेके नीचे चूहा मर गया, कनौजियोकी पगतपर यवनोकी परछाईं पड गई। छुट्टू पडेका तिलक रमजानी भटियारेने चाट लिया, गुड़गाँवेके गूजरोने मेवोके हाथ गाय बेच दी, श्रीमाली ब्राह्मण मस्जिदके कुएँपर स्नान कर आये। अत ये सब विधर्मी होगये है। हिन्दूजातिसे बहिष्कृत, हुक्का-पानी, रोटी-बेटी व्यवहार इनके साथ बन्द" और तारीफ यह कि वे स्वय भी अपनेको पतित समझकर आँसू बहाते हुए विधर्मियोमे मिल जाते है। न तो ये सोने-चाँदीसे मढे भगवान् ही उनकी रक्षा कर पाते है न पतित-पावनी गगा-यमुना, न भगवान्का गन्धोदक। सब निकम्मे हो जाते हैं और वे गायकी तरह डकराते हुए अपनो-से बिछुडनेको बाध्य होते है।

इन पोगापन्थियोके कारण भारतको अनेक दुर्दिन देखने पडे हैं। भारतपर जब विदेशियोके आक्रमण होने लगे तो ये तिलक लगाये, हाथमे माला लिये निश्चेष्ट गौ और मन्दिरोका विध्वस देखते रहे। सीता-हरणकी कथा पढ-पढकर रोते रहे, परन्तु आँखोके सामने हज़ारो सीताओका अपहरण देखते हुए भी इनका रोम न हिला। काश्मीरके ब्राह्मण बलात् मुसलमान बना लिये गये तो काश्मीर-महाराज काशी आकर गिडगिडाये और इन धर्मके ठेकेदारोसे उन्हे वापिस धर्ममें ले लेनेकी व्यवस्था चाही, पर ये टस-से-मस न हुए। मूर्तिको पतित-पावन और गणिका तथा सदना कसाईके उद्धारकी कथा कहते-सुनते स्वय पत्थर बन गये।

बुत बनके वोह सुना किये बेदादका गिला।
सूझा न कुछ जवाब तो पत्थरके होगये॥

करोडो राजपूत मेव, राँघड, मलकाने विधर्मी बन गये, पर

इन्होने उनके रोने और घिघयानेपर भी उन्हे गले नही लगाया। लाखो महिलाएँ गत वर्ष अपहृत होगईं, परन्तु ये वज्रहृदय न तो उनकी रक्षा ही करनेको उद्यत हुए और न अब उन्हे वापिस लेनेको ही तैयार है।

जिनके कारण १०-१५ करोड हिन्दू विधर्मी हुए, उनके प्रायश्चित्तका असली उपाय यही है कि उनकी सन्तानको काश्मीर और हैदरावादके मोर्चो पर हिन्दू जातिकी रक्षार्थ भेज देना चाहिए। क्योकि आक्रामक अधिकाश वही लोग है जो इनके कारण विधर्मी बने है; और जो अब भी इस तरहके अपवित्र मनुष्य है, उन्हे भगियोका कार्य सौंप देना चाहिए और भगियोको कोई दूसरा कार्य, ताकि उनके मिलानेसे भगी अपना अपमान न समझे। समाजके ऐसे कोढियोको, जिनसे समाज क्षीण होता हो, चाण्डालोकी सज्ञा देकर उनसे चाण्डालो-जैसा व्यवहार करना चाहिए।

वाहरे पोगापन्थियो! सकुटुम्ब धर्म-परिवर्तनको तैयार! लुच्चे-लफगोको जवान लडकी देना मजूर!! न इसमे विरादरीकी नाक कटती और न जातीय-मर्यादा नष्ट होती, परन्तु आततायियोको पाठ पढाने-वाली सीतासे भी बढकर सुशीला लडकीको अपनानेमे विरादरीकी इज्जत गोवर होती!

वेशक ऐसी हिजडी समाज उसे कैसे अपनाती और कैसे अपना कलुषित मुंह दिखलाती। व-कौल किसीके—

परदेकी और कुछ वजह अहले जहाँ नही।
दुनियाको मुंह दिखानेके काविल नहीं रहे॥

आत्म-घातक नीति

'एक ही रास्ता' शीर्षकमे राष्ट्र-पिता गाधीजीने लिखा था—"मेरी

समझमे यह नही आता कि कैसे किसी आदमीका दीन-धर्म जबरन बदला जा सकता है। या कैसे किसी एक भी औरतको जबर्दस्ती भगाया या बेइज्जत किया जा सकता है? जब तक हम यह मानते रहेगे आततायी हमारी ऐसी बेइज्जती करते ही रहेगे।"[1]

वास्तवमे इस आत्म-घातक बुनियादी कमजोरीको जडमूलसे उखाडनेके लिए बहुत बडे आन्दोलनकी आवश्यकता है। मनुष्य जब आत्म-ग्लानियोसे भर उठता है और स्वय अपनी नजरोमे पतित हो जाता है, तब उसका उद्धार त्रिलोकीनाथ भी नही कर सकते।

गिर जाते है हम खुद अपनी नजरोसे सितम यह है।
बदल जाते तो कुछ रहते, मिटे जाते है गम यह है।।

—अकबर

जो धर्म पतितोको उबारने, विधर्मियोको अपना बनानेमे सजीवनी शक्ति था। वही आज चौका-चूल्हे, तिलक-जनेऊमे फँसकर समाज-भक्षक बन रहा है।

महिला-समाजकी यह कितनी आत्म-घातक नीति रही है कि झूठ-मूठ दोष लगा देनेपर, या बलात् कोई अधर्म कार्य कराये जानेपर वह स्वय अपनेको धर्म-भ्रष्ट समझ लेती है। और इस अपमानका बदला न लेकर स्वय विधर्मियोमे सम्मिलित हो जाती है।

और नारी-सतीत्व जो उसके अमरत्वके लिए अमृत था, वही अब विषसे भी अधिक घातक सिद्ध हो रहा है। जब स्त्री-पुरुष समान है, तब बलात्कार-से केवल स्त्रीका ही धर्म भ्रष्ट क्यो समझा जाता है? पुरुषका धर्म-भ्रष्ट क्यो नही होता? नारी ही क्यो तिरस्कृत और घृणित होकर रह जाती है? वह क्यो भोग्य बनी हुई है?

---

[1]हरिजन सेवक १ दि० १९४६ पृ० ४१२।

नारीकी इसी दुर्बलतासे कामुक पुरुष लाभ उठाते हैं। नारी इस कृत्य-को इतना बुरा समझती है कि पुरुषके बलात्कार करने पर भी उसे गोपन रखनेकी स्वय मिन्नतें करती है। और किसीपर प्रकट न कर दे, इस आशङ्कासे उसके इशारोपर नाचती है। उचित-अनुचित सभी बाते मानती है। स्वयं अपनेको भ्रष्ट समझती है और भ्रष्ट करनेवाले नर-पशुसे बदला न लेकर उसके हाथोमे खेलती है।

अत अब इस प्रबल आन्दोलनकी आवश्यकता है कि नारीसे बलात्कार करनेपर भी उसका सतीत्व अखण्ड रहता है। कोई पापी कुछ ही खिलादे और कुछ भी करले, पर धर्मभ्रष्ट नही होता। क्योकि धर्म आत्माकी तरह अजर-अमर है। न इसे कोई नष्ट कर सकता है, न छीन सकता है, न अपवित्र कर सकता है। जो धर्म आत्माको परमात्मा बनानेकी अमोघ शक्ति रखता है, वह किसीसे भी छिन्न-भिन्न नही हो सकता।

१९ जुलाई १९४८ ई०

व्यक्तित्व

मनुष्यके निजी व्यक्तित्वसे उसके देश, धर्म, वश आदिका परिचय मिलता है। अमुक देश, धर्म, समाज और वश कितना सभ्य, सुसस्कृत, विनयशील, सेवाभावी और सच्चरित्र है, यह उस देशके मनुष्योके व्यक्तित्वसे लोग अनुमान लगाते है। कहाँ कैसे-कैसे महापुरुष हुए है, किस धर्मके कितने उच्च सिद्धान्त है, इस पुरातत्त्वका ज्ञान सर्वसाधारणको नही होता। वह तो व्यक्तिके वर्त्तमान व्यक्तित्वसे खरे-खोटेका अनुमान लगाते है।

दक्षिण अफ्रीकामे शुरू-शुरूमे भारतसे बहुत ही निम्न कोटिके मनुष्यो-को ले जाया गया और उनसे कुलीगीरीका काम लिया गया। उनकी घटिया मनोवृत्ति और मेहनत-मजदूरीके कार्योसे भारतके सम्बन्धमे वहाँ-वालोकी बहुत ही भ्रामक धारणाएँ बन गई, और वहाँ कुली शब्द ही भारती-यताका द्योतक हो गया। हर भारतीयको अफ्रीकामे कुली सम्बोधित किया जाने लगा। यहाँ तक कि महात्मा गाधी भी वहाँ इस अभिशापसे नही बच पाये।

कलकत्तेमे अक्सर मोटर-ड्राइवर सिक्ख है। एक बार वहाँ गुरु नानकके जुलूसको देखकर किसी अग्रेजने बगालीसे पूछा तो जवाब मिला— 'यह ड्राइवरोके मास्टरका जुलूस है। सुना है वह मोटर चलानेमे बहुत होशि-यार था।' जवाब देनेवालेका क्या कुसूर? वह सिक्ख मोटर-ड्राइवरोकी बहुतायत और मौजूदा व्यवहारके परे कैसे जाने कि सिक्खोमे भी बडे-बडे त्यागी, तपस्वी, शूरवीर, राजे-महाराजे हुए है और है।

योरुपकी किसी लायब्रेरीमे एक भारतीय पहले-पहल गया और वहाँ किसी पुस्तकसे चित्र निकाल लाया। दूसरे दिन ही वहाँ बोर्ड लगा दिया

गया—'भारतीयोका प्रवेश निपिद्ध है' । मेरे बचपनकी बात है, सन् १९१७ मे अपने रिश्तेदार श्री महावीरजी होते हुए भरतपुर भी उतरे। मै भी उनके साथ था। महाराज भरतपुरके रगमहल, मोतीमहल आदि देखने गये तो एक स्थानमे औरतोको नही जाने दिया गया। पूछनेपर मालूम हुआ कि कोई औरत कुछ सामान चुराकर ले गई थी, तबसे औरतोका प्रवेश वर्जित कर दिया गया है।

विदेशोमे भारतीयोके लिए उनकी परतन्त्रता तो अभिशाप थी ही, कुछ कुपूतोने भारतीयताके उच्च धरातलका परिचय न देकर जघन्य ही परिचय दिया। इससे समस्त यूरुपमे भारतके प्रति बडी भ्रामक धारणाएँ बन गई।

यहॉके अधिकाश राजे-महाराजे वहाँ रगरेलियाँ करने गये तो, आम-लोगोको विश्वास हो गया कि भारतीय ऐयाश और पैसेवाले होते है, और इसी विश्वासके नाते यूरुपियन महिलाएँ इण्डियन्सके पीछे मक्खियोकी तरह भिनभिनाने लगी।

अमेरिका-कनाडामे गरीब तबकेके सिक्ख मेहनत-मजदूरी करने पहुँचने लगे तो वहाँ समझा गया कि इण्डियन बहुत निर्धन होते है, अत. नियम बना दिया गया कि निर्धारित निधि दिखाये बिना कोई भी भारतीय अमरीकन सीमामे प्रवेश नही कर सकेगा।

भारतमे जब अग्रेजोका प्रभुत्व जमने लगा तो उन्होने नीति निश्चित कर ली कि भारतमे उच्च श्रेणीके अग्रेज ही जाने पाये, ताकि शासित जातिपर शासकवर्गका अधिकाधिक प्रभाव जम सके। उक्त नीतिके अनु-सार भारतमे जबतक अग्रेज उच्च कोटिके आते रहे, उनके सम्बन्धमे भार-तीयोकी धारणा उच्च-से-उच्चतर बनती गई। लोगोका विश्वास दृढ हो गया कि हिन्दुस्तानी न्यायाधीश, हाकिम, व्यापारी और मित्रसे कही

अधिक श्रेष्ठ अग्रेज न्यायाधीश, हाकिम, व्यापारी और मित्र होते हैं। ये बातके धनी, वक़्तके पाबन्द, उदारहृदय और ईमानदार होते हैं।

परिणाम इस धारणाका यह हुआ कि अग्रेज जज, हाकिम, डाक्टर, वकील, इजीनियर, व्यापारी आदि हिन्दुस्तानियोकी नज़रोमे हिन्दुस्तानियो-से अधिक निष्पक्ष, योग्य और चतुर बन गये। यहाँ तक कि विलायती वस्तु-के सामने हम स्वदेशी वस्तुको हेय समझने लगे। हमारा अभीतक यही विश्वास है कि विलायती वस्तु ख़ालिस और उत्तम होती है। स्वदेशी नकली, मिलावटी और घटिया होती है। लिखा कुछ होगा और माल कुछ और होगा। ऊपर कुछ और अन्दर कुछ और होगा। हिन्दुस्तानीके व्यापार-व्यवहारमे स्वय हिन्दुस्तानीको नैतिकताकी आशका बनी रहती है। अग्रेजोकी उदारता-नैतिकताकी यहाँ तक छाप पडी कि बडे-से-बडे भारतीय पूँजीपतिके सामानको छोडकर कुली अग्रेजका सामान उठायेगा, ताँगेवाले, टैक्सीवाले भी पहले अग्रेजको ही तरजीह देगे। यहाँतक कि मँगते भी पहले उन्हींके आगे हाथ पसारेगे।

अग्रेजोके उच्च व्यक्तित्वका जहाँ प्रभाव पडा, वहाँ उनके अवगुणोसे भी लोग शकित हुए। टामी लोगोमे सच्चरित्र और विश्वस्त भी रहे होगे, परन्तु इनका किसीने विश्वास नही किया। ये हमेशा यूरुपके कलक समझे गये। यूरुपियन महिलाओकी स्वच्छन्दतासे भारतीय इतना घबराते थे कि कोई भी भला आदमी उनके सम्पर्कमे आनेका साहस नही करता था। लोगोका विश्वास था.—

काजरकी कोठरीमें कैसोहू सयानो जाय,
काजरकी एक रेख लागे पर लागे है।

एक बार एक उद्योगपतिने मुझसे कहा था कि यदि मेरे बराबरके डिब्बेमे भी कोई यूरुपियन महिला सफर कर रही हो तो मै तत्काल उस

डिब्बेको छोड देता हूँ। यह लोग कब क्या प्रपच रच दे, अनुमान नही लगाया जा सकता। एक ही आदमीके अच्छे-बुरे व्यक्तित्वसे लोग अच्छे-बुरे अनुमान लगाते रहते हैं।

२-४ आदमियोकी तनिक-सी भूल उनके देश, धर्म, समाज, वर्गके मार्गमे पहाड बनकर खडी हो जाती है। १०-५ ब्राह्मणोने लोगोको विष दे दिया तो लोग कह बैठते है ब्राह्मणोका क्या विश्वास? नाथूराम विनायक गोडसेके कारण, विदेशमे हिंदुओको और भारतमे ब्राह्मणो, महाराष्ट्रो विनायको और गोडसोको कितना कलकित होना पडा है?

ईसाइयोने अपने सेवाभावी व्यक्तित्वकी ऐसी छाप मारी है कि उनके सायेसे भी घृणा करनेवाले बडे-बडे तिलकधारी अपनी बहू-बेटियोको बच्चा प्रसवके लिए मिशनरी हास्पिटलमे नि शक अकेली छोड आते है। सबका अटूट विश्वास है कि उतनी सेवा-परिचर्या घरवालोसे हो ही नही सकती।

मुसलमानोमे अनेक सदाचारी, तपस्वी और मुन्सिफ हुए है, परतु यहाँ चन्द लोगोने अपने व्यक्तित्वका जो असर डाला है, उसको देखते हुए कोई हिंदू स्त्री अकेली उनके मुहल्लोसे निकलनेका साहस नही कर सकती। जनता तो व्यक्तियोके वर्त्तमान व्यक्तित्वसे अपनी धारणा बनाती है। उनके पूर्वज बादशाह थे या पैगम्बर, इससे उसे क्या सरोकार?

अलीगढके ताले और लुधियानेकी नकली सिल्क-एजेण्टोके धोखोसे तग आकर अलीगढी और लुधियानवी लोगोपरसे ही जनताका विश्वास उठ गया। कई धर्मशालाओमे उनके ठहरनेपर भी आपत्ति होती देखी गई है।

कुछ मारवाडी फूहड और लीचड होते है। फर्स्ट क्लासमे सफर करे तो बाथरूमके बेसिनको मिट्टीसे भर दे, डिब्बेमे पानीकी बाल्टी छलका-छलकाकर सिलबिल-सिलबिल करदे। मारवाडी औरते घूँघट मारे रहेगी, पर प्लेटफार्मपर बारीक धोती पहनकर नहाएँगी और धोती जम्पर

बदलते हुए अधनगी भी जरूर होगी। कलकत्तेसे बीकानेर जाते-जाते बाबुओ और कुलियोंको घूसके पचासो रुपये देते जाएँगे, परन्तु दो रुपये देकर लगेजकी रसीद नही लेगे। इन १००-५० फूहडोके कारण अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित नैतिक मारवाडियोको भी कुलियो और बाबुओसे तग होना पडता है। चुगीका जमादार गैरकानूनी वस्तुओके आयात-निर्यात करनेवाले बदमाशोको तो नजर-अन्दाज कर देगा, परन्तु सुसभ्य सुसस्कृत मारवाडी-का ट्रक बिस्तर जरूर खुलवायेगा; क्योकि उसकी धारणा बन गई है कि मारवाडीको तग करनेपर पैसा जरूर मिलता है।

एक सम्प्रदाय और प्रान्त विशेषके नौकरीके इच्छुकोको कलकत्ते बम्बईमे यह कहकर टाल दिया जाता है—

"नौकरी तो है, परन्तु छोकरी नही।" अर्थात् जहाँ छोकरी नही, वहाँ तुम नौकरी करोगे नही और जहाँ छोकरी होगी तुम लेकर जरूर भागोगे।"

भारतमे कई जातियाँ ऐसी है कि लोग राह चलते रात होनेपर जग-लोमे पड रहना तो ठीक समझते है, किन्तु उनके गाँवमे-से गुज़रना मजूर नही करते।

दो-चारके खरे-खोटे आचरण और व्यक्तित्वके कारण समूचा देश, धर्म, समाज, वश कलकित हो जाता है, और वे कलक ऐसे है कि नानीके पाप धेवतोको भुगतने पडते है।

एक बार एक सज्जन बर्मा गये। वहाँ दो बर्मियोने उनका यथेष्ट सत्कार किया। प्रवासयोग्य उचित सहायता पहुँचाई। जब वे बर्मासे प्रस्थान करने लगे तो बर्मी मेजबानोंका आभार मानते हुए, बार-बार अपने लिए कोई सेवा-कार्य बतलानेके लिए आग्रह करनेपर बर्मियोने सकुचाते हुए कहा—"यदि बर्मा-प्रवासमे आपको बर्मियोकी ओरसे कोई क्लेश पहुँचा हो या उनके स्वभाव-आचरण आदिके प्रति कोई आपने धारणा बना

ली हो तो कृपा कर आप उसे समुद्रमे डालते जाये। अपने देशवासियोको इसका आभासतक भी न होने दे।"

क्यो? यही तनिक-तनिक-सी धारणाएँ देश-समाजके लिए पहाड जैसी कलक बनकर उभर आती है। बनियेके यहाँ लोग बिना रसीद लिये रुपया दे आते है। जो देना-पावना उसकी बही बतलाती है, ठीक मान लेते है।

इसका भी कारण यही है कि बनिया लेन-देनमे अधिक प्रामाणिक समझ लिया गया है। जितना-जितना अब वह पतनकी ओर जा रहा है, उतना ही वह बदनाम भी होता जा रहा है।

कुछ स्थानोके निवासी मूर्ख और बुद्धू क्यो कहलाते है? क्या इन जगहोमे सारे भारतके मूर्ख इकट्ठे कर दिये गये है, अथवा यहाँ मूर्ख और बुद्धू पैदा ही होते है? नही, इन शहरोके १०-५ गधोने बाहर जाकर इस तरहकी हरकते की कि लोगोने उनसे उनके प्रान्त और शहरके सम्बन्धमे उपहासास्पद धारणाएँ बना ली। वे गधे तो न जाने कबके मर गये होगे, पर उनके गधेपनका प्रसाद वहाँवालोको बराबर मिल रहा है।

प्रत्येक व्यक्तिको यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके कारण उसका देश-समाज आदि यदि प्रतिष्ठित न हो सके तो बदनाम भी न होने पाये।

अगस्त १९४८ ई०
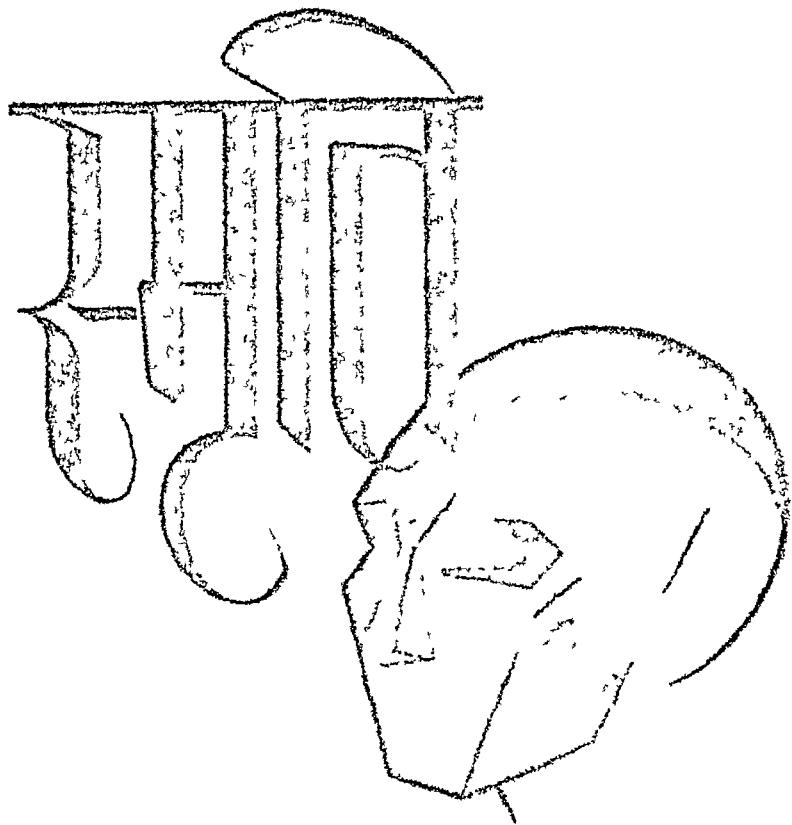
माँकी टेक

मुझे एक प्रतिष्ठित साहित्यिकके पडोसमे १५ वर्षके लगभग रहनेका अवसर मिला है। उनकी माताने अपनी कुल जमा-पूंजी अडी-भीडके लिए एक प्रामाणिक फर्ममे जमा की हुई थी, किन्तु फर्मका अकस्मात दीवाला निकल जानेसे उनकी भी सब जमा-पूँजी बट्टे-खाते हो गई। बेचारी किसीसे कुछ न कहकर मन-मसोसकर रह गई।

एक दिन उनकी माताके प्राण-पखेरू उड गये तो लाशपर उनकी बहन रुदन करती हुई अपनी माँकी सहृदयताका बखान करते हुए उन रुपयोका उल्लेख भी कर बैठी। तभी हमारे साहित्यिक मित्रने रुँधे हुए कण्ठसे कहा—"बहन, जिस भेदको माँने अन्तिम समयतक सीनेमे छिपाये हुए रखा, तुमने उसे उनकी आँख फिरते ही उजागर कर दिया। माँकी यह टेक क्षणभर भी तुमसे सम्भाली न जा सकी।"

११ फरवरी १९५६ ई०

भगतसिंहके दो संस्मरण

मास्टर आज्ञाराम सम्भवतः अमृतसरके रामास्कूलमे उर्दू-अध्यापक थे। वे भी साउण्डर्स केसमे दो वर्षके लगभग वन्दी रहे थे। उचित अभियोगके अभावमे सरकारको उन्हे छोडना पडा था, परन्तु फिर किसी अभियोगमे फाँसकर उन्हे मौण्टगुमरी जेल भेज दिया गया था। उनसे मेरा वहीपर परिचय हुआ था। पहिले तो वे बहुत गुम-सुम रहते थे, फिर स्वभाव आदिसे परिचय होनेपर धीरे-धीरे खुले।

अमर शहीद भगतसिहको तबतक फाँसी नही हुई थी। सोते-बैठते, खाते-पीते अक्सर उनका जिक्र लोगोकी ज़बानपर रहता था। प्रसग चलनेपर मास्टरजीने कई सस्मरण सुनाये, जिनमे-से निम्न दो याद आ रहे है—

[१]

भगतसिंह बचपनमे अपने खेतपर गये तो वहाँ गेहूँ बोते देख कौतुक-वश पूछा—"यह गेहूँ आप मिट्टीमे क्यो फेक रहे है ?"

जवाबमे कहा गया कि मिट्टीमे इसलिए फेक रहे है, ताकि एक-एक गेहूँके सौ-सौ दाने पैदा हो।

बाल-सुलभ उत्सुकतावश भगतसिहने फिर प्रश्न कर दिया—"एक-एकसे सौ-सौ पैदा हो सकते है तो फिर गेहुँओके बजाय बन्दूक क्यो नही बोते ?"

बालककी बातका लोगोने खूब मखौल उडाया, लेकिन यह किसे पता था कि यही बालक एक दिन ऐसी जमीन जोत जायगा, जिससे बन्दूक लिये वीर पैदा होगे।

[२]

साउण्डर्स षड्यन्त्रके अभियुक्त जल-पान कर रहे थे कि साथी किशोरीलालके किसी व्यंग्यपर सरदार भगतसिंहको ताव आ गया और उन्होंने प्लेट उठाकर किशोरीलालको खींच मारी। प्लेट किशोरीलालके घुटनेको छूती हुई फर्शपर गिरकर चकनाचूर हो गई। प्लेट लगनेसे तावमें आनेके बजाय किशोरीलालने मुसकराते हुए घुटनेको सहलाते हुए बरजस्ता यह शेर पढ़ा—

रकाबी खाके जालिमने मेरे घुटने पै दे मारी।
मैं कहता ही रहा जालिम मेरा घुटना-मेरा घुटना॥

शेरका सुनना था कि यार लोगोंके कह-कहोंसे दरो-दीवार गूँज उठे और बेचारा सरदार झेंपकर रह गया।

४ सितम्बर १९५६ ई०

स्व और पर

मियाँवाली जेलमे मेरे ही अहातेकी एक कोठरीमे उसी इलाकेका एक जगली कैदी भी रहता था, जो किसी जुर्मके फलस्वरूप सज़ा भुगत रहा था। मेरे पास बगैर चौखटेके आइनेका एक टुकडा था, जिसे हम सब साथी उपयोगमे लाते थे और बहुत सावधानीसे रखते थे। क्योकि सी क्लासके राजनीतिक बन्दियोको भी इस तरहके सामान रखनेकी मुमानियत थी। न जाने यह शीशा कौन लाया था, परन्तु रिहा होनेवाले इसे अपने साथ नही ले जाते थे और उत्तराधिकारस्वरूप कारागारमे बन्दियोके पास बना रहता था। मै जब मार्च १९३२मे कारागारमे मुक्त हुआ तो वहाँ कोई अन्य राजनीतिक बन्दी नही रह गया था। अत: उस आईनेको पडोसी जगलीने माँग लिया।

चलते समय मुझे मुँह धोनेकी जरूरत हुई और मुँह धोनेके बाद उससे

तनिक आईना माँगा तो उसने जमीन खोदकर आईना निकाला। क्योंकि जेल-अधिकारियोकी सज़ाके भयसे उसने जमीनमे छिपा दिया था।

आईना हाथमे लिया तो अचम्भेमे रह गया। उस भोले-भालेने कभी आईना न देखा था। उसने पार्श्वमे लगे मसालेको मैल समझते हुए आईना खुरचकर जमीनमे गाड दिया था। अब उसमे सूरत क्या नजर आती?

मै उसकी इस अज्ञानता पर हँस पडा। लेकिन उसने अपनी भूल न समझकर यह समझा कि शक्ल देखनेकी तरकीब मैने कस्दन बरबाद कर दी है। उसने अपनी जगली भाषामे जो कहा, उसका आशय था कि—बाबू न देना था तो मना कर देते, इस छलकी क्या ज़रूरत थी?

जगलीको क्या जवाब देता, हँसता हुआ वहाँसे चल दिया। मार्गमे विचार आया—'दर्पणमे जब पर-द्रव्य लगा था, तब अपने अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर न होता था, वह छूट गया तो अपने अतिरिक्त और सब कुछ दिखाई देने लगा। आत्माके साथ शरीर चिपका हुआ है, इसीसे अहम्के सिवा उसे कुछ सुझाई नही देता। अपना रूप, अपना कुल, अपना वैभव, अपना नाम, अपना यौवन, अपना परिवार, अपना हित, जब देखो आप-ही-आप प्रतिबिम्बित होता है। परकी उसे झलक भी दिखाई नही देती। विश्व किस सकटसे गुजर रहा है, अपनी कीर्ति-लिप्साके पीछे कितनोके मान भग हुए हैं। अपने महल-अटारोकी नीवमे कितनोकी जान सिसक रही है। अपने भोग-विलासमे कितनोकी बलि लगी है। अपने प्रीति-भोजोके परिणाम-स्वरूप कितने घरोमे चूल्हा नही जला है और अपनी रगशालाको चित्रित करनेमे कितने अभागोका रक्त लगा है। सशरीरी आत्मा यह सब देख नही पाता। शरीररूपी पर द्रव्य छूटते ही उसे विश्व दिखाई देता है। उसका स्व फिर स्व न रहकर विश्वमे लीन हो जाता है। शरीर-बन्धनसे मुक्ति पाते ही आत्मा परमात्मा होता है।

१० मार्च १९५६ ई०

मतलबी

सन् १९२७ की शरद्-ऋतुकी बात है, मैं रातकी ट्रेनसे लुधियानेसे दिल्ली जा रहा था। सामनेकी बेंचपर दिल्लीका ही एक जुगल जोडा बैठा हुआ था। पानदान साथ था। घूँघट निकाले हुए श्रीमतीजीने दो पान लगाये और अपने पतिकी ओर बढा दिये। एक मेरे लिए, एक अपने पतिके लिए। अम्बाले पहुँचते-पहुँचते पानके कई दौर हुए।

अम्बालेमे दिल्ली जानेके लिए मै दूसरी ट्रेनमे सवार हो गया, उन्हे उसी ट्रेनसे वाया सहारनपुर दिल्ली जाना था। मगर थोडी ही देरमे वे भी मेरे ही डिब्बेमे आ बैठे, और बोले—"साथ छोडनेका जी न चाहा।" साथ छोडनेका किसका जी न चाहा, यह समझते मुझे देर न लगी। पानके दौर फिर शुरू हो गये। उनकी श्रीमतीजी उनसे फुसफुसा कर बोली— "अच्छा इनसे सलाह ले लीजिये।" पति मुझसे बोला—"आप एक सलाह दीजिये। हमारे ससुरके मित्र अजमेरमे बीमार है। यह उन्हे देखने चलनेको कहती है। मेरी मर्जी जानेकी है नही। इन्होने फैसला आप पर छोड़ा है। जो आप सलाह देंगे, वही हम दोनो मानेगे।"

मुझे न जाने क्या मज़ाक सूझा। उन श्रीमतीजीको चिढानेकी नीयतसे बोला—"भाई, आने-जानेमे १००-१५० रुपया स्वाहा हो जायेगे। मध्यम वर्गके लिए यह रकम मामूली नही। साल भरमे भी नही जुडती। ससुरके मित्रके लिए इतना रुपया खर्च करके जाना मेरी समझमे तो व्यर्थ है। गृहस्थीमे सौ बातोका ख्याल रखना पडता है। तन-मन मसोसकर अडी-भीडके लिए जो दो-चार पैसे एकत्र होते है, वह यूँ पानीमे नही बहा दिये जाते। बीमारी आदिका बहाना लिखकर चुप्पी खीच जाओ।"

मेरी बात सुनकर पति देवता खिल उठे और कहने लगे—"सुन लो

जो मैं कहता था, वही इन्होंने भी कहा। अब तो तुम्हारी समझमें आया।"

मेरी मौलवियाना नसीहतसे श्रीमतीजी कुम्हला-सी गईं और मुँह फेर कर बोली—"ये मरद सभी मतलबी होते हैं। पैसेको जानसे ज्यादा समझते हैं। प्यार-मुहब्बत उसके आगे इनकी नजरोंमें कुछ भी नही।"

बात वही खतम हो गई। नक़्शा बिगडा हुआ-सा देख मैं भी लिहाफ ओढकर लेट गया। थोडी देरमें फिर पान लगे। पतिने कहा—"दो पान क्यो, ये तो सो गये।" आवाज आई—"सोये नही हैं, पान दे दो।" और बराबर दिल्लीतक वक्तन-ब-वक्तन पान जब भी लगे, मुझे लिहाफमें दिये गये, और मैं मतलबी पान बराबर लेता रहा, 'न' कहनेकी फिर हिम्मत नही हुई! उनके घरका पता पूछनेका भी साहस न कर सका।

१५ अक्तूबर १९५५ ई०

क़ैदी बनाम इन्सान

सन् १६३२ की बात है, मियाँवाली जेलमे एक कैदी एड़ियाँ रगड-रगडकर मर गया। न उसे देखने डाक्टर आया, न उसे दवा मिली, न उसकी किसीने परिचर्या की। सुबह होनेपर उसकी लाश ठिकाने लगायी जानेके लिए जेलसे बाहर ले जाई जा रही थी तो वहीके क्वार्टरोमे रहनेवाली तमाशायी औरतोमे से एक बोली—

"मैं तो समझी कोई बन्दा (इन्सान) मर गया है, यह तो मुआ कैदी निकला।"

उसके बन्दी-जीवनने मानो उसकी मानवता भी छीन ली थी। वह उनकी नजरोमें इन्सान नही, हैवान था।

१६ जून १९५५ ई०

मुँह न दिखाना

खत्रीसे अधिक गोरा कोढी और नाईसे ज्यादा सयाना कौवा—इस कहावतके अनुसार यूँ तो प्राय सभी नाई चुस्त और चतुर होते हैं, पर न्यादर नाई अपने हुनरमे कमाल रखता था। मैंने उसे उसके बुढापेमे देखा था। बाल वह बहुत कम बनाता था। दिल्लीमे जैनियोका वह नाई था। शादी-विवाहो आदिसे उसकी काफी आमदनी थी। घरका मकान था। शादि-

योके बुलावे देनेके वक्त वह बडी सज-धजके साथ लाला लोगोके आगे-आगे चलता था। अक्सर पाँवमे सलेमशाही जूती, चूडीदार पायजामा,

मौसमके अनुसार अँगरखा पहिने, सरपर गोलेदार पगडी लगाये, कन्धेपर कीमती दुशाला डाले हुए होता था। उसकी सज-धज और अन्दाज़े-गुफ्तगूका यह आलम कि एक बार वह किन्हीं रईसे-आजम रायबहादुरकी लड़कीकी सगाई लेकर गया तो वर-पक्ष उसे रायबहादुर ही समझकर स्वागतको खड़े हो गये। लेकिन उसके यह कहने पर कि "आप नाहक मुझे इतनी इज़्ज़त बख़्श रहे हैं, मैं तो आपका एक अदना गुलाम हूँ" बहुत झेंपे।

वफादार, नेक, चतुर और वृद्ध होनेके कारण सभी उसे मानते थे। चुहलबाज भी था। हम बच्चे अक्सर उससे पुराने जमानेकी बातें सुनते। छेड़-छाड भी करते। एक रोज कम्बख़्तीकी मार कि मैं उससे बाल कटवाने बैठ गया। बाल कटवाते हुए पासमें रखा आईना मुँहके सामने मैं अभी ले भी न गया था कि वह कघा-कैंची नीचे रखकर दूसरी तरफ देखने लगा। मैंने सबब पूछा तो मुसकराकर बोला—"आप आईनेसे जबतक शग्ल-फरमायें मैंने सोचा मैं तबतक बाज़ारकी सैर देख लूँ।"

मैंने चुपचाप आईना रख दिया, वह फिर बाल बनाने लगा। नाख़ून काटनेके लिए उसने नहन्ना उठाया तो मैंने अपने नाख़ून पानीसे भिगो लिये। वह नहन्ना रखकर फिर बाजारकी तरफ देखने लगा। सबब पूछा तो बोला—"अब मैं अपना हुनर क्या दिखाऊँ? ये मुलायम नाख़ून तो हर ऐरा-गैरा काट सकता है।"

दूरन्देश वह बलाका था। मेरी शादी दिल्ली-की-दिल्लीमें हुई है। फेरोंके लिए भाई साहब घरसे जेवरात और जरूरी सामान ट्रकमें भरकर ताँगेमें रखवाने चले तो उसने जेवरके डिब्बे ट्रकमें-से निकालकर चुपचाप दुशालेमें लपेटकर बगलमें दाब लिये। जनवासेमें पहुँचे तो सब सामान तो मिल गया, परन्तु वह जेवरवाला बक्स न देखकर भाई साहब घबरा गये कि वह ट्रक तो ताँगेमें ही रह गया। दौडकर देखा तो ताँगेवालेका

पता न था। भाई साहब अब किससे क्या कहे, जेवर और कपडा अब दुबारा इतनी जल्दी कैसे जुटाये। इसी परेशानीमे खडे थे कि दूसरे ताँगेसे न्यादर भी पहुँच गया और जाते ही जेवरातके डिब्बे भाई साहबके आगे रख दिये। भाई साहबके आश्चर्यचकित होकर पूछनेपर कि 'यह तुम्हारे पास डिब्बे कैसे आये ? वह ट्रक कहाँ है ?'

न्यादरने बताया कि जेवर तो मैंने इसी खयालसे कि कही भाग-दौडमे ट्रक रह न जाये, घरपर ही निकालकर बगलमे दबा लिये थे। मैंने समझा कि आपने देख लिये है।

रातको पाणिग्रहणके समय जब वरमाला डालनेके लिए कन्या-पक्षसे विवाहाचार्य्यने मालाएँ तलब की तो वे एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। मालाएँ रखनेका किसीको ध्यान ही नही रहा था। उन्हे एक-दो मिनट लज्जित-सा हुआ देखकर न्यादरने अपनी बगलमे दबे तौलिएसे मुसकराते हुए दो हार निकाले।

वक्तपर जेवर और हारोका न मिलना कैसी स्थिति उत्पन्न कर देता, कल्पनासे ही मन सिहर उठा। लगे हाथ नाइयोकी चतुरताका एक लतीफा भी सुन ले।

एक बार किसी यजमानने एक नाईसे खफा होकर कह दिया—"आदमीका बच्चा है तो, आइन्दा मुझे मुँह मत दिखाना।"

यजमान चाहे गरीब हो या अमीर, उसकी बातका बुरा क्या मानना। यजमान आखिर यजमान है। उन्हीकी बदौलत तो बाल-बच्चोकी परवरिश होती है। मगर उक्त वाक्य कुछ इस ढगसे कहा गया कि नाईने उनको मुँह दिखाना फिर उचित नही समझा।

दशहरा आया तो नाई पसो-पेशमे पड गया। अपने-अपने यजमानको उस रोज आईना दिखाकर नाई इनाम-इकराम लेते है। इनाम-इकरामकी

तो कोई ऐसी बात नही। मगर आईना यजमानको न दिखाना उसका अमगल समझा जाता है। अतः यह कैसे सम्भव होता कि वह अपने यजमानका अमगल चाहे, परन्तु मुँह दिखानेको भी जी न चाहता था। बहुत सोच-विचारके बाद अपनी पीठसे आईना बाँधकर उनके यहाँ पहुँचा और दुशालेसे मुँह ढककर पीठ उनकी तरफ करके बोला—"हुजूरकी जान-मालकी सलामती बनी रहे। दुश्मनकी छातीपर लात मारकर यह दिन आया है। अपना चन्द्र-मुख दर्पणमे देखनेकी कृपा करे।"

लालाने नाईको देखा तो चराग-पा होकर बोले—"क्यो बे नाईके, तेरी इतनी मजाल, हमको पीठ दिखाता है? मैंने जब कह दिया था कि आइन्दा अपना मुँह न दिखाना, फिर भी तू क्यो आया?"

नाईने उसी तरह पीठ किये और मुँह ढाँपे हुए अर्ज किया—"कौन नालायक आपको मुँह दिखा रहा है? इसीलिए तो पीठपर आईना बाँधकर आया हूँ। और हुजूर बेअदबी माफ, आपको तो अच्छे-अच्छे अफलातून पीठ दिखा गये, फिर मैंने भी पीठ दिखाई तो क्या गुनाह किया?"

नाईकी इस हाजिर जवाबीपर लाला खिल उठे। अपने हाथसे दुशाला उतारकर पहिले उसका मुँह देखा, फिर दर्पणमे अपना मुँह देखा और खूब इनाम देकर बिदा किया।

३१ अगस्त १९५६ ई०

हमारे भी हैं क़द्रदाँ कैसे-कैसे

साथ ले गये।" आज दिल्लीके गली-कूचोमे डाक्टरोकी भरमार है, परन्तु डा० अन्सारी-जैसा सिद्धहस्त एव दीनबन्धु डाक्टर कहाँ?

वकौल इकबाल —

हजारो साल नरगिस अपनी बेनूरी पै रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा॥

७ जुलाई १९५६ ई०
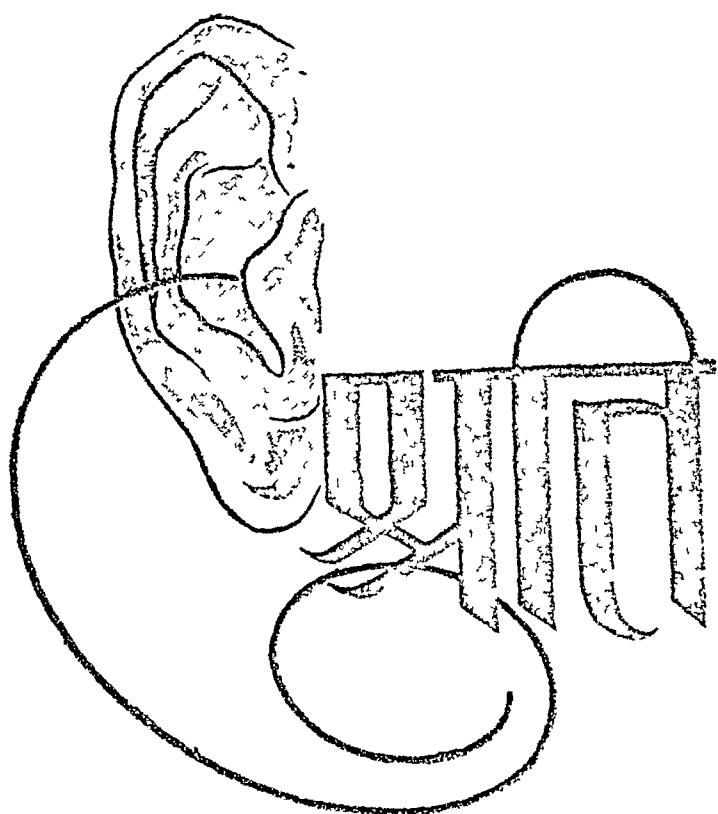
छोटे मियाँ सुबहान अल्लाह

इन्सानके दम घोटनेवाले नित नये कानूनोकी ईजादोके प्रसगपर तरुण कवि रग साहबने मेरे गरीबखानेपर १४ अगस्तकी एक मुख्तसिर-सी कवि-गोष्ठीमे बरमहल एक लतीफा सुनाया तो हँसीके मारे पेटोमे बल पड-पड गये। एक तो प्रसग, दूसरे उनका अन्दाजे-बयान। दोनोने मिलकर वह सितम ढाया कि कुछ न पूछिये। उन जैसा लहजा मेरे पास कहाँ, फिर भी पेश कर रहा हूँ।

एक बडे मियाँ ताजी कब्रोको खोदकर कफन निकाल लिया करते थे। और उसे बाजारमे बेचकर बीबी-बच्चोकी परवरिश किया करते थे। मरने लगे तो अपने जवान लडकेको मुखातिब करके फरमाया—"बेटे, हम तो अब अल्लाहके प्यारे हो रहे है। मगर तुम हमारी इज्जतो-आबरूको कायम रखना। ऐसा न हो कि आख झपकते ही गाँववाले हमे भूल जाये।"

बडे मियाँके सरपर हाथ फेरते हुए लडका बोला—"अच्छे अब्बा, आप यह क्या फरमा रहे हैं? गाँववाले आपको भूल जाये, यह हरगिज मुमकिन नही। उठते-बैठते उनको आपकी याद सतायेगी। आप इत्मीनान रखे, आपकी खूबियाँ तो बरकरार रखूँगा ही, उनमे चार चाँद लगा दूँगा। खुदा गवाह है कि जन्नतमे आप मुझपर बजा-फख्र कर सकेगे।"

लडकेके इत्मीनानपर बडे मियाँने सब्रो-सकूनके साथ जन्नतके लिए हिजरत की। दो-चार रोज तो लडकेकी समझमे कुछ न आया कि बुजुर्गवारकी इज्जतको किस तरह दुबाला किया जाय, मगर सोचते-सोचते हल निकल ही आया।

चन्द रोजमे ही आस-पासके गाँवोमे हाय-तौबा मच गई। जनाबके करिश्मोसे तग आकर लोग कफे-अफसोस मल-मलकर कहने लगे—

"इस लौण्डेने तो नाकमे दम कर दिया है। इससे तो इसका बाप ही गनीमत था, जो कब्रका जरा-सा हिस्सा उघाडकर कफन निकाल लेता था और कब्रको फिर जैसी-की-तैसी बना देता था। मगर यह तो कफन उतार-कर मुर्देको घरके बाहर डाल जाता है। जिससे मुर्देको दुबारा कफना-कर दफनाना पड़ता है। उसकी इस हरकतसे मुर्देकी जिल्लत तो होती ही है, पसमान्दगानको दुहरा खर्चकी जहमत भी उठानी पडती है। कम्बख्त इस सफाईसे काम करता है, कि रँगे हाथो कभी पकड़ा भी नही जाता। बडे मियाँ तो बडे मियाँ थे ही, ये छोटे मियाँ तो सुबहान अल्लाह निकले। जालिमने क्या करिश्मा ईजाद किया है। बापसे दूनी आमदनी भी बढा ली और खान्दानी पेशेको बरकरार भी रक्खा।"

आखिर गाँववालोने तग आकर उसका मृत्यु-टैक्स नियत कर दिया, ताकि-मुर्देकी जिल्लत और दुबारा दफनानेकी जहमत न हो।

२९ अगस्त १९५६ ई०

परस्परकी फूट

एक राजकुमारके पेटमे साँप रहता था। वह राजकुमारके सो जानेपर बाहर निकलता और थोडी देर बाहरकी सैर करके फिर वापिस पेटमे चला जाता। वह राजकुमारसे कभी इतनी दूर न होता कि आक्रमण होनेपर वह पेटमे जा न सके या पलटकर उसे काट न सके। साँपके निकलनेपर राजकुमार भाग भी नही सकता था। क्योकि उसके हिलते-डुलते ही वह पेटमे घुस जाता था या काटनेको प्रस्तुत रहता था।

अत दिन-पर-दिन राजकुमारकी हालत बिगडती जा रही थी। राज-वैभव सब उसके लिए व्यर्थ था। राजा भी बहुत चिन्तित रहता था, परन्तु साँपसे छुटकारेका कोई उपाय न सूझता था।

सयोगकी बात एक रोज राजकुमार जगलोकी सैरको निकल गया। वहाँ वह इतना अधिक थक गया कि एक पेडकी छाँहमे उसे विश्राम करना पडा। हवाका ठण्डा झोका लगते ही राजकुमारको नीद आ गई। हस्व-दस्तूर पेटका साँप हवाखोरीको बाहर निकला तो वही उसे एक जगलका साँप भी मिल गया। दोनोमे पहले तो वार्तालाप चला फिर वर्तालापने बहसका रूप ले लिया और बहस धीरे-धीरे लडाईमे बदल गई। लडते-लडते दोनो साँप थककर चूर होगये तो क्रोधावेशमे एक-दूसरेके नाशके उपाय कहने लगे।

इस झगडे और वितण्डावादसे राजकुमारकी नीद उचाट हो गई, परन्तु साँपके भयसे वह चुपचाप पडा सुनता-देखता रहा। पेटका साँप फन उठाकर बोला—"अफसोस है कि राजकुमार सोया हुआ है, काश, उसे मालूम हो जाये कि तू इतनी बडी धन-राशिपर बैठा हुआ है तो गरम-

गरम तेल तेरे बिलमे डालकर पहिले तुझे मार डाले फिर धनको गाडियोमे भरकर राजधानी ले जाये।"

जगली साँपने भी तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया—"यह तेरे लिए अच्छा ही है जो राजकुमार सोया हुआ है। अगर वह सुनले कि काँजी पीनेसे पेटके कीडे मर जाते है तो फिर तेरी खैर नहीं।"

राजकुमारने दोनोकी बात गिरह बाँधली। साँपके पेटमे चले जानेपर उसने घर जाकर पहिले काँजी पीकर पेटके साँपसे छुटकारा पाया फिर धन राशिपर भी अधिकार जमाया।

१ सितम्बर १९५६ ई०

मौलवीको लड़कोंने सबक़ पढ़ाया

याद करो लडको—

दस्तार	मायने	पगडी
आतिश	मायने	आग
ग़लबा	मायने	हमला

मौलवी साहब पढाते-पढाते अफीमकी पीनकमे झपकी लेने लगे और लड़के इन मायनोको जोर-जोरसे बोलकर याद करने लगे। एक जहीन लडकेने सबक घोखते-घोखते सोचा कि क्यो न एक ऐसा जुमला बनाया जाय, जिसमे यह तीनो अलफाज चस्पाँ हो सके। सबक रटते-रटते उसकी नजर मौलवी साहबके हुक्केकी तरफ गई तो चट एक जुमला बन गया।

उसने चिलमसे एक चिनगारी उठाकर चुपके-से मौलवी साहबके सरकी पगडीमे डाल दी, फिर जोर-जोरसे सबक रटने लगा, "मौलवी साहब तुम्हारी दस्तारमे आतिशने गलबा किया, मौलवी साहब तुम्हारी दस्तारमे आतिशने गलबा किया।"

मौलवी साहब पीनकमे ही बडबडाये—

"शाबास इसी तरह रटे जाओ" और फिर झपकियाँ लेने लगे।

थोडी देरमे पगडीकी आग जब मौलवी साहबकी चाँद तक पहुँची तो घबराकर उन्होने पगडी सरसे उतार फेकी और वह देखते-देखते जलकर खाक हो गई।

मौलवी साहब झल्लाकर बोले—"क्यो बे नालायको बताया तक नही, अगर मेरे दूसरे कपडोने आग पकड ली होती तो क्या होता ?"

"कई रोजकी छुट्टियाँ होती और क्या होता ?" जवाब तो लडके यह देना चाहते थे, परन्तु बेतको सामने देखकर सहम गये और दबी ज़बानसे बोले—हम तो खूब ऊँची आवाजमे—'मौलवी साहब तुम्हारी दस्तारमे आतिशने गलबा किया'—पुकार-पुकारकर आपको बेदार करनेकी कोशिश करते रहे, मगर आपने तवज्जह ही नही फरमाई। इसमे हमारा क्या कुसूर ?" मौलवी साहब फिर कभी मकतबमे नही ऊँघे।

९ जुलाई १९५६ ई०

जाके न फटी बिवाई

मन्दिरकी दरी गुम हो जानेपर पुजारीजी इधर-उधर तलाश करने लगे। एक-एक सन्दूक, अलमारी बीसोबार खोलकर देखे। किवाडोके पीछे, चटाई और बोरीके नीचे झाँककर देखा, मगर दरी न मिली। अन्तमे खोजते हुए आलेमे रक्खे हुए लिफाफेको भी उठाकर देख लिया। पुजारीजीकी इस वहशतको देखकर एक दर्शक बोले—"पुजारी-जी! क्या इतनी बडी दरी भी लिफाफेके अन्दर छिप सकती है?" पुजारीजीने कहा—"लिफाफेके नीचे दरी नही छिप सकती, यह तो मै भी जानता हूँ, पर जब कोई चीज गुम हो जाती है, तब ऐसी वहशत सभीको हो जाती है। कटोरीमे हाथी छिपनेकी आशका होने लगती है। मालूम होता है कभी आपकी वस्तु गुम नही हुई।

जनवरी १९४० ई०

न भूतो न भविष्यति

एक नये रईस अपने लडकेकी शादी इस खूबीसे करना चाहते थे कि लोग-बाग अश-अश कर उठे और कहे कि ऐसी शादी न कभी देखी-सुनी और न देखे-सुनेगे। उनके पडौसमे एक वयोवृद्ध महिला रहती थी, जिसके पास गाँवके छोटे-बडे जाकर दु ख-सुखमे परामर्श लिया करते थे। उन रईसने भी जाकर मनकी बात कही तो वृद्धा बोली—"यह तो तुम्हारी इच्छापर है बन्ने ! जैसा गुड डालोगे, वैसा ही मीठा होगा। तुम कितना खर्च करना चाहते हो ? औरोकी होड करना व्यर्थ है। ससारमे एक-से-एक माईके लाल मौजूद है।"

नये रईसने अहकारपूर्वक जवाब दिया—"ताई मै औरो-जैसी शादी नही करना चाहता। फिर मुझमे और सबमे अन्तर क्या रहेगा ? मै ऐसी मिसाल कायम करना चाहता हूँ कि लोग पुश्त-दर-पुश्त जिक्र करते रहे। मै दिलके अरमान निकालना चाहता हूँ।"

वृद्धा वात्सल्य भावसे बोली—"हाँ बेटे, हौसला बडी चीज है। दिलके अरमान अब न निकालोगे तो फिर कब निकालोगे ? आखिर यह रुपया कमाया किस लिए जाता है ?"

"हाँ ताई, मै दिल खोलकर खर्च करना चाहता हूँ। शादीमे क्या बाँटू, कैसी दावत दूँ, कितनी बारात ले जाऊँ, सब बाते मुझे विस्तारसे समझा।"

"यही बात मर्दोको शोभा देती है, बेटे जरा ठहर, मै अभी आई।"

वृद्धा अन्दर गई और एक सोनेका कटोरा लाकर बोली—"बेटा बाँटनेका क्या है, लोगोने खजाने लुटा दिये है, राज बाँट दिये है। ५०-५० ऊँटोंपर लादकर अर्शाफियाँ लोगोने बखेरी है। फुलवारियोमे नोट लगाये

हैं। तुम्हे तो अपनी हैसियतके अनुसार ही काम करना चाहिए। समाईसे ज्यादा खर्च करनेमे जग-हँसाई होती है। तेरे ताऊ एक बारातमे गये थे, वहाँ एक हज़ार बारातियोको आध-आध सेरके सोनेके यह कटोरे मिले थे। तू उससे ज्यादा नाम चाहे तो हीरा-मोती जड़वाकर बाँट दे। नगर दावते तो मैं कई बार देख चुकी हूँ, तू ज़िलेकी कर दे और ज्यादा चाहे तो सूबे भरकी दावत कर दे।"

वृद्धाको आशा थी कि शादीमे कटोरेकी जोडी हो जायगी, पर सोनेका कटोरा न आकर मुरादाबादी गिलास आया। जिसपर तीन पक्तियोमे वितरकोके नाम लिखे हुए थे। दावतके नामपर वनस्पति घीके चार लड्डू आये और इस प्रकार वह "न भूतो न भविष्यति" विवाह सम्पन्न हुआ।

६ अक्तूबर १९५५ ई०

आबरू बिगाड़ना-बनाना

एक रईसजादे दोस्तोमे अक्सर अपनी दरिया-दिलीकी डीगे हाँका करते और औरतोकी कजूसीका मज़ाक उडाया करते थे। एक रोज़ तग आकर बीबीने कहा "आप ज्यादा शेखी न बघारा कीजिए। यह इज्जत-आबरू हमी लोगोकी वजहसे बनी हुई है। चाहे तो दमभरमे किरकिरी कर दे।",

मगर रईसजादे मान कर न दिये, उनका वही बतीरा बना रहा। एक रोज बैठकमे उनके कुछ खास-खास दोस्तोकी मौजूदगीमे उनका ७-८ बरसका बच्चा आकर बोला—"अब्बा हुजूर खाना बन गया है, चलकर तकसीम कर दीजिये। हमको भूख लगी है, फिर स्कूल भी जाना है।"

सुनकर रईसज़ादेका चेहरा फक हो गया, काटो तो खून नही। अभी बच्चा जाने भी न पाया था कि उनकी खादिमाने आकर अर्ज़ किया—"सरकार, गरीब-गुरबा आ गये है, चलकर खाना उन्हे तकसीम कर दीजिए। ताकि उनके बाद बच्चे भी खाकर वक्त पर स्कूल पहुँच सके।"

रईसजादेकी इज्जतका भाण्डा चौराहेपर फूटते-फूटते बचा। वे तुरन्त अन्दर गये और मुसकराते हुए बोले—"बेगम मानते है आपको। एक ही जुमलेमे आबरू बिगाड भी सकती है और बना भी सकती है। तोबा करते है सरकार, जो आजसे कभी चूँ भी करे आपके सामने।"

बेगम खडी-खडी मुसकराती रही।

६ अक्तूबर १९५५ ई०

माँके दर्शन

जहाँगीर वादशाहका शासन-काल था। आगरेके किलेमे मीना-बाजार लगा हुआ था। यह जनाना बाजार भी कहलाता था। क्योकि इस वाजारमे महिलाएँ ही सामान बेचती थी, महिलाएँ ही खरीदती थी। वादशाहके अतिरिक्त अन्य पुरुषका प्रवेश निषिद्ध था। इस वाजारमे मलिका, बेगमात, रानियाँ, ठकुरानियाँ, शाहजादियाँ, राजकुमारियाँ, रईसजादियाँ, गरीब-अमीर सभी महिलाएँ बेपरद घूमती, चुहल करती। एव खरीदो-फरोख्त करती थी।

आगरेका एक युवक मुसलमान सौदागर भी इस मेलेमे जानेकी प्रबल आकाक्षा रखता था। उसने भी वहाँ एक दूकान ली थी, जिसपर उसकी पत्नी जाकर बैठती थी। अपने साथ नारी-वेशमे ले चलनेके लिए उसने पत्नीकी काफी मिन्नत-समाजत की, मगर वह रज़ामन्द न हुई। उसका कहना था कि—"वहाँ वहुत होशियारीसे जाँच की जाती है, शक होते ही पहरेदार तातारनियाँ खटसे सर कलम कर देगी। हमे ऐसी गलती हरगिज-हरगिज नही करनी चाहिए।"

मन मारकर सौदागर कुछ दिनोके लिए आगरेसे टल गया। इसी अर्सेमे उसकी पत्नीके पास एक हसीना युवती आई जो अपनेको उसकी ननद वतलाती थी। उसने बताया कि "तुम्हारी शादीसे २-३ साल कब्ल हम ईरान रहने लगे थे। वावजूद कोशिशके भी हम शादीमे शरीक न हो सके, जिसका हमे वेहद मलाल है। अब ब-मुश्किल चन्द दिनोके लिए हिन्द आना हुआ है। आते ही तुमसे मिलने आई हूँ। भाईसे मिलकर दो-चार रोजमे चली जाऊँगी।"

शको-शुबहकी कोई गुंजाइश न थी। शक्लो-शबाहत, नक्शो-निगार सभी कुछ शौहरसे हू-ब-हू मिलते थे। बीबीने पुरतपाक उसका खैरमकदम किया। आँखोपर बिठाया। खातिर-तवाजामे जमीनो-आसमान एक कर दिये। दिन भर खूब घुल-मिलकर बाते की। रातको दोनो ननद-भावज मीना बाजार गई। भावज तो दुकानपर बैठ गई और ननद घूम-फिरकर बाजार देखने लगी।

मीना बाजारमे हस्ब दस्तूर जहाँगीर और नूरजहाँ चहल-कदमी कर रहे थे कि भीडमे-से गुजरते हुए नूरजहाँने कहा—"जहाँपनाह!"

जहाँगीर—मलक-ए-आलम!

नूर—बाजारमे कोई मर्द मालूम होता है?

जहाँगीर—जी आपका गुलाम मौजूद है।

नूर—नही जहाँपनाह, आपके अलावा कोई बाहरी मर्दुआ मालूम होता है।

जहाँगीर—यह आप क्या फरमा रही है, जाने-मन!

नूर—मै सच अर्ज कर रही हूँ। आज मुझपर फिर चाहतकी नजर पड रही है। भीडमे पहचान नही पा रही हूँ। मगर यह अम्र यकीनी है।

बादशाह मलिकाको साथ लेकर तुरन्त अन्त पुर चले गये, परन्तु जाते हुए बाजारके व्यवस्थापकको आज्ञा दे गये कि बाजार बन्द होनेसे पहिले-पहिले दरवाजेके बाहर सवा गज चौडी और हाथ भर गहरी खाई खुदवाकर उसमे पानी भर दिया जाय। खाई खुदनेतक किसीको बाहर न निकलने दिया जाये और बाहर निकलते वक्त जो मस्तूरात पानीमे पाँव देकर पार हो, उन्हे कुछ न कहा जाय। सिर्फ उसे गिरफ्तार किया जाय जो छलाग मारकर खाईके पार हो जाये।

बाजार बन्द होनेका वक्त हुआ ही था कि सौदागर-पत्नीकी ननद मुश्के बँधी हुई बादशाहके समक्ष उपस्थित की गई। उस वक्त बादशाहके

क्रोधकी सीमा न रही। जलील, कुत्ते, नाहजार, मरदूद, कमीने वगैरह गालियाँ देनेके बाद हुक्म हुआ—"इसे शहरके चौराहेपर आधा गाडकर गुड लपेट दिया जाय, ताकि कुत्ते इसकी बोटियाँ चबा डाले और दूसरोको इबरत मिले।"

जल्लाद जब उसे ले जाने लगे तो बादशाहने कडककर पूछा—"तुमने यह गुस्ताखी करनेकी हिम्मत क्यो की ?"

"आलीजहाँ, मुझे अब मरनेका गम नही, मैंने आज अपनी माँको देख लिया, मेरी सारी तमन्नाएँ पूरी हो गई ।"

"क्या मतलब तुम्हारा ?"

"मेरे पैदा होते ही माँ अल्लाहको प्यारी हो गई। चची खालाने परवरिश की, उन्होने लाड-प्यारकी मुझपर बारिश कर दी। घरमे बेशुमार दौलत थी, फिर भी माँकी कमी मुझे खटकती रही। शायद मैं महसूस भी न करता। क्योकि मैंने उसे न देखा था न उसका प्यार पाया था। लेकिन घर और बाहर उसका अक्सर जिक्र रहता था । माँ इतनी नेक, सुघड और स्वभावकी भली थी कि बात-बातपर उसका जिक्र चलता था। रग-रूपका जिक्र चलनेपर सभी कहते रहते कि 'जिसने इसकी माँको न देखा हो, वह नूरजहाँ मलिकाको जाकर देख ले। कही हव्वा भर भी फर्क नही।' रोजाना माँका जिक्र और उनके साथ मलिक-ए-आलमकी मुशाहबत सुनते-सुनते मैं उनका नियाज हासिल करनेके लिए बेताब हो उठा। जर्रेकी क्या बिसात जो सूरजतक पहुँच सके। इसलिए मैंने इस मौकेको अपनी पाक ख्वाहिशके लिए मौजूँ समझा। अपनी माँ का दीदार मुझे नसीब हो गया। अब आप जो भी सजा दे हक-ब-जानिब है। बडी-से-बडी सजा मेरे इस गुनाहके लिए नाकाफी है।"

परदेमे जलवा-फरमाँ मलिकाने सुना तो उनका रोम वात्सल्यसे भीग उठा। उन्होने पास बुलाकर उसकी पेशानीको बोसा दिया और उसे बहुत लाड-प्यारके साथ बिदा किया।

३१ अगस्त १९५६ ई०

जूतेकी बदौलत बादशाह

सन् १८५७के स्वतन्त्रता-युद्धके दिनोमे दिल्लीके लाल किलेमे कुछ विद्रोही सैनिक परस्पर चुहल कर रहे थे कि सामनेसे बादशाह-को अकस्मात् आते देखकर एक सिपाहीने चुप रहनेका इशारा किया, तो दूसरा सिपाही बोला—'परवाह न कर, बादशाह आता है तो आने दे, हम जिसके सर पर जूता रख दे वही बादशाह बन जायगा।"

शतरजके बादशाहसे भी गया-गुजरा बेचारा बहादुरशाह बादशाह चुपचाप निकल गया।

१ अप्रैल १९५६ ई०
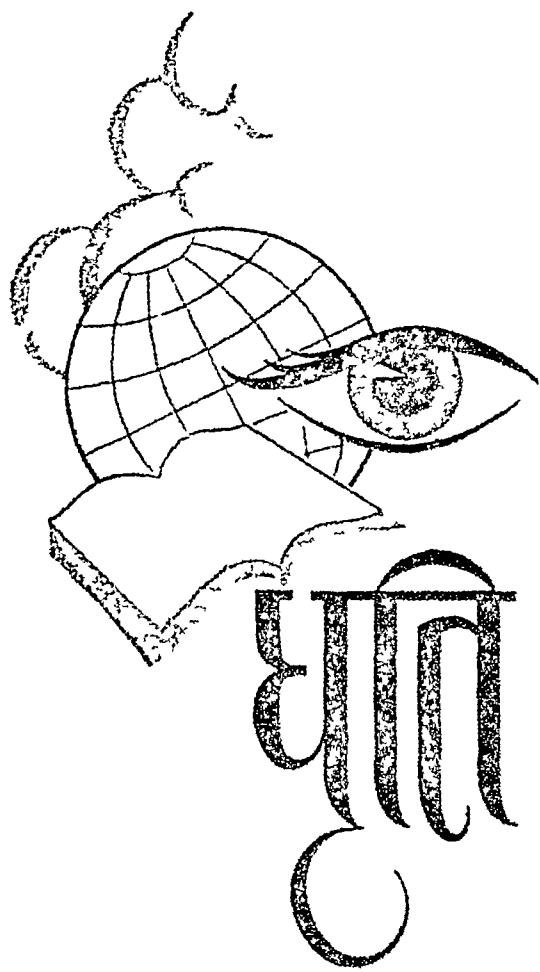
वीर-बभ्रुवाहन

वनवासके समय गुप्तवेशमे पाण्डव जब इधर-उधर वनोकी खाक छानते फिरते थे, तब उन्ही दिनो अर्जुनने मनीपुरकी राजकन्या चित्रागदासे विवाह कर लिया था। उसी नगरमे एक 'अलूपी' नामकी सुन्दरी कन्या थी। उससे भी अर्जुनका गन्धर्व विवाह हो गया था। पाण्डव विपत्तिमे फँसे हुए थे, प्रकट न हो जावे, इस भयसे वे एक स्थानपर न रहकर स्थान परिवर्तन कर लेते थे। इसी कारण गर्भवती चित्रागदा तथा अलूपीको वही छोडकर उन्हे फिर मिलनेका आश्वासन देकर पाण्डव अन्यत्र विहार कर गये। चित्रागदाकी कोखसे ही वीर बभ्रुवाहनका जन्म हुआ था। अलूपीने नि सन्तान होनेके कारण बभ्रुवाहनका लालन-पालन स्वय किया और पुत्रके समान उसकी देख-रेख की। चित्रागदाके पिताके स्वर्गवास होने पर १५ वर्षकी अवस्थामे बभ्रुवाहन अपने नानाके राज्यका उत्तराधिकारी हुआ।

उधर पाण्डवोने कौरवोका नाश करके दिग्विजय करनेकी ठानी। गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन अनेक देशोको विजय करते हुए 'मनीपुर' भी आये। पिताका आगमन सुनकर मारे हर्षके बभ्रुवाहनको रोमाच हो आया। वह अर्जुनका स्वागत करनेके लिए अनेक रत्न-जवाहरात लेकर उसके सामने पहुँचा। बभ्रुवाहनके साथ उसकी सौतेली माँ अलूपी भी थी। बभ्रुवाहनको देखते ही अर्जुनको क्रोध चढ आया, आँखोमे खून उतर आया। वह दाँत पीसकर बोला—

"अरे मूर्ख! जान बचानेके वास्ते चाहे जिसे बाप कहने लगा। तुझे शर्म नही आती। यदि तू अर्जुनका पुत्र होता, तो अर्जुनके सामने अर्जुन

ही के समान सीना तानकर आता। यदि तेरा कहना सत्य भी मान लिया जाय कि तू वास्तवमे अर्जुनका पुत्र है तो क्या हुआ ! आज अर्जुन तेरा बाप बनकर तो नही आया है, वह तो तेरा शत्रु बनकर आया है। हा ! जब लोगोको यह मालूम होगा कि अर्जुनका पुत्र शत्रुसे हार गया, तब लोग क्या कहेगे ? उस समय मुझे कितनी वेदना होगी ? धिक्कार है तेरी माँको, जिसने तेरे जैसा कायर-पुत्र जना। ओह ! मुझे क्या मालूम था कि चित्रागदा नपुसक पुत्र पैदा करेगी, वरना मै क्यो सबध करता ? यदि तू अर्जुनका पुत्र होता तो अपने शत्रुके सामने दीनतापूर्वक नही आता। 'लव'-'कुश' रामसे कहने नही गये थे कि हम आपके पुत्र है। अपितु रणक्षेत्रमे रामको नीचा दिखाकर उन बालकोने बतला दिया था कि हमारी जननी सीता है। यदि तू भी मेरे सामने धनुष ताने हुए शत्रुओकी भाँति मेरा मानमर्दन करनेके लिए आता तो आज मेरी मारे आत्मगौरवके छाती फूल उठती। तू मुझे नीचा दिखाता, किन्तु वही मेरी विजय होती । ससार कहता अर्जुनका पुत्र अर्जुनसे भी बढकर निकला, किन्तु अब यह मेरी विजय होना भी पराजय है। लोग कहेगे अर्जुन-पुत्र पामर है, कायर है, क्षत्रिय-कुल कलकी है। हा! जब मै ऐसे शब्द सुनूँगा तो मारे आत्म-ग्लानिके गड जाऊँगा। धिक्कार है उस चित्रागदाको जिसने तेरे जैसा शिखण्डी पुत्र पैदा किया।"

अलूपी खडी हुई सब सुन रही थी। अर्जुनके यह वाणीके बाण उसके हृदयमे चुभ गये। वह चुटीली सर्पिणीके समान फुफकारकर बोली—"पुत्र बभ्रुवाहन ! या तो पाण्डु-सुतका मान-मर्दन कर, इसकी शेखी खाकमे मिलादे, या मुझे और अपनी माँ चित्रागदाको मार दे। क्षत्राणी मरना स्वीकार कर लेगी, किन्तु अपमान नही सह सकती। पाण्डु-सुतने यह अपशब्द तेरी माँ चित्रागदाके लिए कहे है, किन्तु मै भी तेरी माँ हूँ।

वह तो सिर्फ तेरी जन्मदात्री है, किन्तु मैने लालन-पालन किया है, और तेरे ऊपर सव मातृ-अधिकार मेरा ही है। अतएव पाण्डु-सुतका यह सारा कटाक्ष मुझीको लक्ष्य करके हुआ है।"

कहते-कहते अलूपी क्रोधोन्मत्त हो गई। वह घायल सिहिनीके समान गरजकर बोली—"पुत्र युद्धके लिए प्रस्तुत हो जाओ! पाण्डु-पुत्र तुमसे अधिक वलवान नही हो सकता। पाण्डु-सुत तुझे कायर कहता है, चित्रा-गदाको धिक्कारता है, किन्तु वह वे दिन भूल गया, जब द्रौपदीकी साडी खीची गई। भरे-दर्बारमे उसे लात मारी गई थी। जिसे प्राणोके भयसे नर्तक वनकर राजा विराटके यहाँ रहना पडा था, जिसके भाइयोको रोटी वनाने, गाय चराने और घोडोकी खिदमत करनी पडी थी। वही आज ज़रा-सी विजय होने पर अपने सामने किसीको नही समझता। मानो पृथ्वी वीरोसे शून्य हो गई है। यदि मै आज पाण्डु-सुतकी पत्नी न होती तो उसके ऐसे गर्वीले शब्दोका उत्तर युद्धसे देती। मै वह द्रौपदी नही हूँ, जो साडी खिच जाने पर भी चुपचाप रही, परन्तु मुझे मेरा पातिव्रतधर्म ऐसा करनेके लिए आज्ञा नही देता। अतएव पुत्र! तू पाण्डु-सुतको उसके गर्वीले वचनोका समुचित उत्तर देकर वतलादे कि मैने वास्तवमे वीर-क्षत्राणीका दुग्धपान किया है।"

ऐसे उत्तेजना भरे शव्दोको सुनकर बभ्रुवाहनका रक्त खौल उठा, भवे तन गई, कमरमे लटकी हुई तलवार झनझना उठी, दाँत किटकिटाकर तलवार निकाल ली और यह कहते हुए कि "मेरी माँका अपमान करनेवाला ससारमे जीवित नही रह सकता।" शेरकी तरह अर्जुनपर झपट पडा। अर्जुन पहले ही सावधान था। दोनोका घमासान युद्ध होने लगा। अन्तमे अर्जुन वभ्रुवाहनके करारे वार न वचा सकनेके कारण मूर्छित होकर पृथ्वी-पर गिर पडा।

उपचार करनेके पश्चात् अर्जुन होशमे आया। उसने बभ्रुवाहनको प्यारसे गले लगा लिया और बोला—"वास्तवमे तू वीर है, वीरोको वीर-पुत्रोकी ही आवश्यकता होती है। फिर अलूपी और चित्रागदाकी ओर देखकर अर्जुन मुसकराये।[1]

१९३९ ई०

[1] महाभारतके अनुसार लाला दीनानाथजीकी एक कविताके आधार पर।

वीरसेनाचार्य्य

सन् १४७८ ईस्वीकी बात है, जब जैनोपर काफी सितम ढाये गये थे। कोल्हुओमे पेलकर, तेलके गरम कढाहोमे औटाकर, जीवित जलाकर और दीवारोमे चुनकर उन्हे स्वर्गधाम (?) पहुँचाया गया था। जो किसी प्रकार बच रहे, वे जैसे-तैसे जीवन व्यतीत कर रहे थे।

उन्ही दिनो दक्षिण-अर्काट जिलेके जिजी प्रदेशका वेंकटामयेट्टई राजा था। इसका जन्म कबरई नामकी नीच जातिमे हुआ था। उच्च कुलोत्पन्न कन्यावरण करके उच्चवशी बननेकी लालसाने उसे वहशी बना दिया था। उसने जैनोको बुलाकर अपनी अभिलाषा प्रकट की, कि वे अपने समाजकी किसी सुन्दरी कन्यासे उसका विवाह कर दे।

राजाके मुखसे उक्त प्रस्तावका सुनना था, कि जैन वज्रहते-से रह गये। यह माना कि "ससार असार है, जीवन क्षण-भगुर है, राज्य-वैभव नश्वर एव पापका मूल है" ऐसे ही कुछ विचारोके चक्करमे पडकर जन जन अपनी राज्य-सत्ता लुटा बैठे थे, प्राचीन गौरव खो बैठे थे, फिर भी वशज तो नर-केसरियोके थे। वनका सिह अपनी जवानी, तेज और शौर्य खो देनेपर भी मूँछका बाल क्या उखाडने देगा ? वह दलदलमे फँसे हाथीके समान तो अपमान सहन कर नही सकेगा ? भले ही जैन अपना पूर्व वैभव तथा बल-विक्रम सब गँवा बैठे थे, परन्तु जैनधर्म-द्वेषी, नीच कुलोत्पन्न राजाको कन्या दे दे, यह कैसे हो सकता था ? यह उस कन्या और कन्याके पिताका ही नही, वरन् समूचे जैनसघके अपमान और उसकी आन-मानका प्रश्न था। यह अभिलाषा प्रकट करनेका साहस ही राजाको कैसे हुआ ? यही क्या कम अपमान है। इस धृष्टताका तो उत्तर देना ही चाहिए, पर विचित्र ढगसे, यही सोचकर जैनोने कन्या विवाह देनेकी स्वीकृति दे दी।

नियत समय और नियत स्थानपर राजाकी बारात पहुँची, किन्तु वहाँ स्वागत करनेवाला कोई न था। विवाहकी चहल-पहल तो दरकिनार, वहाँ किसी मनुष्यका शब्द तक भी सुनाई न देता था। घबराकर मकान-का द्वार खोलकर जो देखा गया तो, वहाँ एक कुतिया बैठी हुई मिली, जिसके गलेमे बँधे हुए कागजपर लिखा था "राजन्! आपसे विवाहको कोई जैनबाला प्रस्तुत नही हुई, अत हम क्षमा चाहते हैं। आप इस कुतियासे विवाह कर लीजिये और जैन-कन्याकी आशा छोड दीजिये। सिहनी कभी शृगालको वरण करते हुए नही सुनी होगी।"

वाक्य क्या थे? जहरमे बुझे हुए तीर थे। आदेश हुआ राज्य भरके जैनोको नष्ट कर दिया जाय। जो जैनधर्म परित्याग करे उन्हे छोडकर बाकी सब परलोक भेज दिये जाये। राजाज्ञा थी, फौरन् तामील की गई। जो जैनत्वको खोकर जीना नही चाहते थे, वे हँसते हुए मिट गये, कुछ बाह्यमे जैनधर्मका परिधान फेककर छद्मवेशी बन गये, और कुछ सचमुच जैनधर्म छोड बैठे!

जैनधर्मके बाह्य आचार—जिन-दर्शन, रात्रि-भोजन-त्याग और छना हुआ जलपान—सब राज्य-द्वारा अपराध घोषित कर दिये गये। अपराधी-को मृत्यु-दण्ड देना निश्चित किया गया। परिणाम इसका यह हुआ कि धीरे-धीरे जनता जैनधर्मको भूलने लगी और अन्य धर्मके आश्रयमे जाने लगी।

इन्ही दिनो दुर्भाग्यसे क्यो, सौभाग्यसे कहिए, एक गृहस्थ महाशय टिण्टीवनम्के निकट बेलूरमे एक तालावके किनारे छिपे हुए जल छानकर पी रहे थे। राजाके सिपाहियोने उन्हे देखा और जैन समझकर बन्दी कर लिया। पुत्र होनेकी खुशीमे राजाने उस समय प्राण-दण्ड न देकर भविष्यमे ऐसा न करनेकी केवल चेतावनी देकर ही उन्हे छोड दिया।

सिंहकी गोली खानेपर जो स्थिति होती है, वही उक्त गृहस्थ महाशयकी हुई। वे चुटीले साँपकी तरह क्रुद्ध हो उठे! "बच जानेसे तो मर जाना कही श्रेष्ठ था, क्या हम छद्मवेशी बने, इसी तरह धर्मका अपमान सहते हुए जीते रहेगे"—इन्ही विचारोंमे निमग्न होकर मारे-मारे फिरने लगे, वापिस घर न गये और श्रवणबेलगोलामे जाकर जिन-दीक्षा ग्रहण करके मुनि हो गये। उन्होने अध्ययन करके जैन-धर्मका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। और फिर सारे दक्षिणमे जीवन-ज्योति जगा दी। सौ जैन रोज़ाना बनाकर आहार ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा ली। यह आज-कलके साधुओ-जैसी अटपटी और जैनसघको छिन्न-भिन्न करनेवाली प्रतिज्ञा नही थी। यह जानपर खेल जानेवाली प्रतिज्ञा थी। मगर जो इरादेके मजबूत और बातके धनी होते है, वे मृत्युसे भी भिड जाते है, और सफलता उनके पाँव चूमा करती है। अतः निर्भय होकर उन्होने धोसेपर चोट जमाई और वे गाली, पत्थर, भयकर यत्रणाओ तथा मान-अपमानकी परवाह न करके कार्य-क्षेत्रमे उतर पडे। हाथीकी तरह झूमते हुए जिधर भी निकल जाते थे, मृतकोमे जीवन डाल देते थे। उनके सत्प्रयत्नसे विखरी हुई शक्ति पुन सचित हुई। जो जैन छद्मवेशी बने हुए थे, वे प्रत्यक्ष रूपमे वीर-प्रभुके झण्डेके नीचे सगठित हुए और जो जैन नही रहे थे, वे पुन जैनधर्ममे दीक्षित किये गये। साथ ही बहुत-से अजैन जो जैनधर्मको अनादरकी दृष्टिसे देखते थे, जैनधर्ममे आस्था रखने लगे, और जैनी बननेमे अपना सौभाग्य समझने लगे। जिस दक्षिण प्रान्तमे जैनधर्म लुप्तप्राय हो चुका था, उसी दक्षिणमे फिरसे घर-घरमे णमोकार मन्त्रकी ध्वनि गूँजने लगी। आज भी दक्षिण प्रान्तमे जो जैन-धर्मका प्रभाव और अस्तित्व है, वह सब प्रायः उन्ही कर्मवीरके साहसका परिणाम है। जहाँ-जहाँ उन्होने अपने चरण-कमल रक्खे, वहाँ-वहाँका प्रत्येक अणु पूजनीय बन गया है।

इन्ही प्रात.स्मरणीय श्रीवीरसेनाचार्यका समाधिमरण वैलूरमे हुआ। जैनधर्मके प्रसारमें इनको सहायता देनेवाला जिंजी प्रदेशका गगप्पा ओड-इयर नामका एक गृहस्थ था। इसने जैनधर्मकी प्रभावना और प्रसारमे जो सहायता दी, उसके फलस्वरूप आज भी जब बिरादरीमे दावत होती हैं, तब सबसे पहले इसीके वश वालोको पान दिया जाता है, तथा टिडीवनम् तालुकाके सीतामूरमे जब भट्टारकका चुनाव होता है, तब इस वशवालेकी सम्मति मुख्य समझी जाती है। इसकी सन्तान अभी तक तायनूरमे वास करती है[1]।

फरवरी १९३८ ई०

---

[1]इस लेखमें उल्लिखित बातें कल्पित अथवा पौराणिक नही, किन्तु सब सत्य और विश्वस्त हैं तथा मद्रास-मैसूरके स्मारकोमें बिखरी हुई पडी है। उन्हीपरसे यह निबंध सकलित किया गया है।

कालकाचार्य्य

मगध देशके अन्तर्गत थारावास (धारावास) नगरके राजा वज्रसिहकी पटरानी सुरसुन्दरीकी कोखसे कालककुमार और सरस्वतीका जन्म हुआ था। युवा होने पर सासारिक ममता इन्हे अपनी ओर न खीच सकी, जैन-धर्मानुसार दीक्षित होकर कालककुमार साधु-वेशमे और सरस्वती आर्यिका-वेशमे लोक-हितके सन्देशको लेकर पृथक्-पृथक् गाँवो, देहातो, शहरो, वनो, पर्वतोमे विचरने लगे। विचरते हुए कालककुमार उज्जैनीमे भी आये, अब यह जैनसघके आचार्य पदपर प्रतिष्ठित थे। उस ओर ही विचरते हुए साध्वी सरस्वतीने कालकाचार्य्यका उज्जैन आगमन सुना तो वह भी कालकाचार्यसे धर्म-श्रवणके लिए उज्जैन आगई।

उज्जैनका राजा गर्दभिल्ल जो एक प्रजापीडक, स्वार्थान्ध, कामपीडित, शासक था, सरस्वती साध्वीको मार्गमे देख, तप और सयमसे चमकते हुए उसके रूपपर मुग्ध हो गया, और राज-कर्मचारियो-द्वारा बलात् हरण करके उसे अन्त.पुरमे भिजवा दिया।

यह समाचार क्षण भरमे विजलीकी तरह सारे जैन-सघमे फैल गया। उज्जैन-वासी दहाड मार कर रोने लगे। वह एक डेपुटेशन लेकर राजाके पास पहुँचे, रोये, गिडगिडाये, पाँवो पडे, पर राजा गर्दभिल्लने एक न सुनी। उल्टा डेपुटेशनमे गये हुये सघके इन प्रमुखोको दुत्कारकर बाहर निकाल दिया। बेचारे भेडोकी तरह नीची गर्दन किये हुए चले आये। कालकाचार्य्यने जैनसघकी विफलता और अकर्मण्यताको सुना तो दग रह गये।

यदि साध्वीका अपहरण करनेवालेको इनमे दण्ड देनेकी क्षमता न थी, सरस्वतीको वापिस लानेकी इनमे शक्ति न थी; तो ये सब वही मर क्यो न गये, यहाँतक खाली हाथ लौट आनेमे इन्हे लाज न आई।

यह सरस्वतीकी रक्षाका प्रश्न नही, यह तो राष्ट्रधर्म और समूचे मानव-समाजका अपमान था, फिर भी यह सब इस अपमानको जहरकी घूँटके समान पीकर भी जीवित बने रहे, वीर-पुत्र होनेपर भी कायरोकी भाति चले आये, इससे अधिक श्रीसघका और क्या पतन होगा ?

कालकाचार्य्य यद्यपि एक साधु थे, चलते हुए भी कोई जीव न मर जाय, इस खयालसे चलते हुए मार्गमे चार हाथ जमीन देखकर चलते थे। उनकी दृष्टिमे शत्रु-मित्र, महल-श्मशान, मान-अपमान सब समान थे। वह दयासागर और क्षमाके भण्डार थे, किन्तु यह अत्याचार देखना उन्होने मानव-समाजका अपमान और अपने लिए पाप समझा। । वह एक बार स्वय गर्दभिल्लको समझानेके लिए उसके पास गये, किन्तु गर्दभिल्ल न माना।

कालकाचार्य्य दुर्द्धर तपश्चरण करके अपने क्षत्रियोचित शरीरको बिल्कुल बेकार कर चुके थे, न उनमे वह पहला-सा शौर्य था, न बल, केवल हड्डियोकी माला बने हुए थे, फिर भी उनकी नसोमे वीर-लहू प्रवाहित था मुखपर उनके तेज था, वह इस अत्याचारका बदला लेनेके लिए प्रस्तुत हो गये। घूमते हुए वे सिधु नदीके तटपर बसे हुए पार्श्वकुल नामके देशमे जा पहुँचे, जहाँ साखी (शक) राजा राज्य करते थे। कालकाचार्य्यके कहनेसे शक राजा ससैन्य उज्जैनपर चढ आया और कालकाचार्य्यकी चतुरतासे गर्दभिल्लको परास्त कर दिया।

कालकाचार्य्यको गर्दभिल्लसे व्यक्तिगत वैर नही था, उन्हे उसके इस अत्याचारसे वैर था। शक राजा उसे मार डालना चाहते थे, किन्तु कालकाचार्य्यने प्रायश्चित्तस्वरूप उसको राज्यसे वचित रखना ही यथेष्ट समझा। सकटावस्थामे पडी हुई सरस्वती साध्वीको कालकाचार्य्यने कारा-गृहसे मुक्त किया और फिर दोनो भाई-बहन साधुके उत्कृष्ट व्रत धारण करके लोक-हितके लिए विचरने लगे।

जनवरी १९३४ ई०

महामेघवाहन खारवेल

प्रथम राजवंश और महाभारत-युद्ध—

महामेघवाहन खारवेलका जन्म ई० पू० १९७मे चैत्रवशके तृतीयवशमे हुआ था। हिन्दूपुराणोके अनुसार महाभारत-युद्धके समयसे कलिंगका राजवश चला आता था। महाभारतके युद्धमे कौरवोके निमत्रण-पर कलिंगराज श्रुतायु (श्रुतायुध) अपने तीन वीरपुत्रो—भानुमान, केतुमान, और शुक्रदेवको साथ लेकर ६० हजार रथ और १० हजार हाथियो समेत ससैन्य वीर-गतिको प्राप्त हुआ था। भीष्मके आगे लडनेवाले सप्तरथि-योमे कलिंग-राज अग्रणी था। द्रोणाचार्यके तीखे वाणोसे धृष्टद्युम्नको वचानेकी नीयतसे भीमने द्रोणाचार्यपर एक साथ सात बाण छोडे। अत कही द्रोणाचार्य घायल न हो जायँ, इस आशकासे कलिगराज श्रुतायुधने आगे वढके भीमके प्रहारको रोका, साथ ही अपने साथ युद्ध करनेको लल-कारा। आखिर कलिंग-राजकुमार केतुमानके रणकौशलके आगे भीमकी सेना न ठहर सकी और उसके पाँव उखड गये। थोडे-से सैनिकोके साथ लडते हुए, भीमके रथके घोडे शुक्रके वाणोसे विधकर गिर पडे तो भीम यम-राजके समान गदा लेकर उसपर टूट पडा और शुक्रदेव (कलिगराजकुमार) को यमलोक पहुँचा दिया। अपने पुत्रको काम आया देख कलिंगराज दून उत्साहसे भीमसे भिड गये, तब भीमने घबराकर गदा छोड तलवार हाथ-मे ली और भानुमानको धराशायी कर दिया। कलिगराज दोनो पुत्रोका मरण देख किञ्चित् भी विह्वल न हुए, अपितु अत्यन्त वेगसे वाणोका प्रहार करके भीमको जमीन सुँघा दी, तब भीमके सहायक अशोकने भीमको सम्भाला और जैसे-तैसे दूसरा रथ मँगवाकर उसपर सवार कराया।

अन्तमे बचे हुए अपने एक पुत्रके साथ कलिगराज वीर-गतिको प्राप्त हुए। राजाके मरनेपर भी कलिंग-सेना रणक्षेत्रमे डटी रही, और उसने अपनी अपूर्व वीरतासे भीमके छक्के छुडा दिये। यहाँ तक कि भीमकी रक्षार्थ धृष्टद्युम्न और सात्यकिको भी आना पडा। कौरवोकी पराजयके साथ-साथ उनके हिमायती कलिगोकी पराजय भी अवश्यम्भावी थी। फिर भी कलिंगके इस रण-कौशल और साहसकी प्रशसा मुक्त-कण्ठसे शत्रु-पक्षकी ओरसे सात्यकि-जैसे महारथीने की थी।

द्वितीय राज-वंशका अशोकसे युद्ध—

कहते है महाभारतसे नन्दराजत्वकाल ई० पू० ३२२ तक कलिंगमे ३२ राजा इस वशके राज्य कर चुके थे। साम्राज्य-विस्तार करते हुए नदवशी राजा कलिग जीतकर वहाँके राज-वशकी पूजनीय, ऋषभनाथ (जैनधर्मके प्रथम तीर्थंकर) की मूर्ति ले गया था और तभी से प्रथम एल राजवशकी समाप्ति हुई, किन्तु अन्तके नन्दवशी राजाओको दुर्बल देख कलिगमे फिर स्वाधीनताकी घोषणा कर दी गई। इस स्वाधीनताकी घोषणा करनेवाला कलिगका यह द्वितीय एल राजवश कहलाया। कलिगके यह राजा एल (एर०, आर्य) कहलाते थे।

इसी द्वितीय एलवशीय राजाके शासनकालमे अशोकने सिहासन प्राप्त करनेके १३ वे वर्षके अनन्तर ई० पू० १५६मे अपनी सारी शक्ति बटोर कर कलिंगपर आक्रमण कर दिया। कलिंग उस समय भी एक शक्तिशाली राज्य था, उसकी प्रबलता शायद उसके जगी हाथियो और जहाजोसे थी। कलिगके वीर होनेका यही काफी प्रमाण है कि वह नन्द-राजाओसे पराधीन होनेपर भी स्वाधीन हो गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके पुत्र बिन्दुसारने समस्त भारतको विजित किया, किन्तु मार्गमे पडते

हुए भी कलिंग-देशको न छेडा। कलिंगको छेडना सोते सिंहको ललकारना था। अतः वह कतराकर भारतमे मौर्य-साम्राज्यका विस्तार करते रहे, किन्तु कलिंग-वासियोकी यह स्वाधीनता, साम्राज्य-लोलुपी अशोकसे न देखी गई, और वह राज्यसिंहासनारूढ होनेपर १२ वर्षतक उसको विजित करनेकी उधेडबुनमे लगा रहा, और अन्तमे महान् सामरिक सामग्री सकलित करके अपनी समस्त शक्तिके साथ कलिंग-वासियोको जा ललकारा। कलिंग-वासियोको युद्धके लिए ललकारना सरल था, किन्तु उनसे लोहा लेना जरा टेढी खीर थी। कलिंगवासी, क्या राजा क्या प्रजा, सदासे स्वाधीनता-प्रिय थे। वे पराधीन होनेसे मरना श्रेष्ठ समझते थे। रणभेरी सुनते ही उन्मत्त हो उठे। कौन पामर है जो उनके जीते जी उनकी स्वर्गतुल्य जन्मभूमिपर पादप्रहार कर सकेगा, उनकी स्वाधीन क्रीडा-स्थलीपर विचर सकेगा? सारा कलिंग क्षणमात्रमे प्राणोका तुच्छ मोह त्याग कर, इस युद्धमे जूझ मरा। इस महान् युद्धमे स्वाधीनता-प्रिय कलिंग-वासी एक लाख बन्दी, डेढ लाख आहत और इससे भी कही अधिक वीरगतिको प्राप्त हुए। पर भाग्य इनके प्रतिकूल बह रहा था, सर्वस्व स्वतन्त्रता-यज्ञमे आहुत कर दिया किन्तु स्वतन्त्रताकी देवी इनसे प्रसन्न न हुई, वे युद्धमे जूझ मरे, किन्तु विजयी न हुए। पर कलिंग-राज स्वाभिमानी था, उसने आत्म-समर्पण अथवा आधीनता स्वीकार करनेके बजाय, कलिंग छोड जगलोमे रहना उचित समझा। विलासपूर्ण परतन्त्र जीवनसे उसने वनमे स्वतन्त्र रहना अधिक श्रेयस्कर समझा—

जौ अधीन तौ छाँड़िये, स्वर्गहुँ विभव विलास।
जौ पै हम स्वाधीन तौ, भलो नरक कौ वास॥

—वियोगीहरि

पराधीन देशमे स्मशान देश अच्छा, यही सोचकर कलिंग-राजवश और उनके साथी जगलोमे जा रहे। मातृ-भूमि छूट जानेपर दिलोपर क्या गुजरती है, यह वेदना निर्वासित व्यक्तियोके सिवाय और कौन अनुभव कर सकता है?

स्वाधीनता-प्रिय कलिंगवासी मातृ-भूमिसे जुदा तो हुए, परन्तु अपने सीनेपर पत्थर रखकर[1] वे अपना हृदय अपनी मातृ-भूमिमे ही छोड गये।

अब वे दक्षिण कौशलमें स्वतन्त्र रहकर अपनी जन्मभूमिके उद्धारकी युक्तियाँ सोचने लगे। लगन बडी चीज है। जिनके हृदय अपनी मातृ-भूमिको स्वतन्त्र करनेके लिए उमड रहे हो, वे वीर असफलताओकी ओर दृष्टिपात नही करते। जो वीर है, जिन्हे अपने आत्म-बल और बाहुबलपर विश्वास है, उनके आज नही तो कल, नही तो परसो एक-न-एक दिन सफलता अवश्यमेव पाँव चूमेगी।

> जो बा-हिम्मत है उनका रहमते-हक साथ देती है।
> कदम खुद आगे बढ़के मंजिले-मकसूद लेती है॥

असफलताकी बडी-से-बडी चोट, उनके हृदयोको आघात नही पहुँचा सकती। अपनी धुन और लगनके पक्के अपनी कर्मवीरतासे प्रतिकूल परि-स्थितियोको भी अपने अनुकूल बना लेते है। ससारकी निष्ठुरता भी उनके सामने फीकी पड जाती है।

इस युद्धमे अशोक विजयी तो अवश्य हुआ, किन्तु उसे हारसे भी अधिक मानसिक सन्ताप और आत्मग्लानि हुई। कलिंगवासियोके आत्मोत्सर्गका कुछ ऐसा हृदयग्राही प्रभाव पड़ा कि साम्राज्यलोलुपी अशोक धर्मभीरु

---

[1]कलिंग-वासियो-जैसा ही अनुकरण उनके १८०० वर्ष बाद महा-राणा प्रतापने किया था।

अशोक बन गया। उसने जीवनभर फिर युद्धोको घृणित समझा, और सदैव कलिगवासियोकी आन-मानका सबसे अधिक ध्यान रक्खा। हमेशा अपने धर्म-लेखो-द्वारा कलिगमे नियुक्त अपने प्रतिनिधियोको वहाँके निवासियोको सुख पहुँचानेका विशेष सन्देश देता रहा।

तृतीय राजवंश और स्वतन्त्रताकी घोषणा—

अशोककी मृत्युके पश्चात् शनैः शनैः मौर्य-साम्राज्य निर्बल होता चला गया और मौर्यवशी शालिसूकके शासनकालमे उचित अवसर पाकर ई० स० पू० २२० मे दक्षिण कौशलसे एलवशीय चैत्र राजाने कलिगको अपने हस्तगत करके फिर स्वाधीनताकी घोषणा कर दी। चैत्रराजाने अबकी बार स्वाधीनताकी घोषणा की थी, इसीलिए उसके नामपर यह तृतीय वश कहलाया। कलिगके उक्त तीनो राजवशीय एल कहलाते थे और महामेघवाहन इनकी उपाधि होती थी। यह तीनो वश एक ही राजवशसे सम्बन्धित थे या पृथक्-पृथक् यह अभी निश्चित नही हुआ है।

इसी तृतीय राजवश या तीसरी पीढीमे (ई०पू० १६७मे) राजा खारवेलका जन्म हुआ। इसके सम्बन्धमे एक शिलालेख मिला है, जिसका सबसे प्रथम ज्ञान स्टर्लिंग साहबको सन् १८२५मे हुआ। तबसे आजतक अनेक पुरातत्त्वविमर्ष-विचक्षण अपने अनुसन्धान-द्वारा अनेक ज्ञातव्य बाते प्रकाशित कर चुके है। इसके प्रसिद्ध अन्वेषक और विशेषज्ञ मि० के० पी० जायसवाल थे। जो अनवरत परिश्रमसे इसकी अनेक ज्ञातव्य बातोको-प्रकाशमे लाये है।

“कलिगदेश (उडीसा) मे खण्डगिरी—उदयगिरी नामक प्रसिद्ध दिगम्बर जैन-क्षेत्र, भुवनेश्वर स्टेशनसे तीन मीलपर है। यहाँ अनेक गुफाये, शिलालेख और दीवारसे लगी हुई मूर्तियाँ है। यही हाथीगुफामे महा-

मेघवाहन राजा खारवेलका २१०० वर्षका प्राचीन उक्त प्रसिद्ध शिलालेख है। जो प्राय पाँच गज लम्बा और दो गज चौडा है। इसमे १७ पंक्तियाँ हैं, प्रत्येक पक्तिमे ९० से १००तक अक्षर है। इसकी भाषा कुछ स्थलोको छोडकर विशेषत धर्मग्रन्थोमे व्यवहृत पाली है। इसकी लिपि ई० पू० १६० वर्षकी उत्तरीय ब्राह्मी है। अनेक अक्षर नष्टप्राय हो चुके हैं, तो भी अधिकाश भाग भलीभाँति पढा जाता है ?"[१] भारतीय इतिहासकी सामग्रीके लिए यह अत्यन्त कीमती महत्त्वपूर्ण शिलालेख है। अशोकके धर्मलेखोके बाद यही वह दूसरा शिलालेख हैं, जिसे पुरातत्त्वज्ञ इतिहासके रीढकी हड्डी समझते है।

खारवेलका राज्याभिषेक

ई० पू० १८२मे १५ वर्षकी अवस्थामे अनेक विद्याओमे निपुणता प्राप्त करके खारवेल युवराज-पदपर प्रतिष्ठित हुआ और ई० पू० १७३ मे २४ वर्षकी आयुमे कलिंगके राज्य-सिंहासनपर अभिषिक्त हुआ। कलिंगकी राजधानी उस समय तोषली (वर्तमान धोली) थी, और कलिंगकी जनसख्या ३५ लाख थी।

राज्यासन प्राप्त करते ही खारवेलने प्रथम वर्षमे अपनी राजधानीको शत्रुओसे सुरक्षित रखनेके लिए प्राचीर आदि बनवाकर सुदृढ किया और इस कार्यसे निवृत्त होते ही राज्य-प्राप्तिके द्वितीय वर्षमे दिग्विजयके लिए प्रस्थान कर दिया।

मूषिक-आन्ध्र विजय

दक्षिण कौशलके पश्चिममे मूषिक नामक एक देश कलिंगसे लगा हुआ उत्तर पश्चिमकी ओर (वर्तमान कालाहाण्डी, सम्बल आदि) फैला हुआ

---

[१] अनेकान्त वर्ष १ किरण ५ पृ० २८५।

था। मूषिकवासी कलिगके अधीनस्थ काश्यप क्षत्रियोको निरन्तर सताते रहते थे। अत काश्यपोके इस सकटको दूर करनेके लिए खारवेलने आन्ध्र-प्रान्तकी ओरसे मूषिकोपर आक्रमण किया, किन्तु आन्ध्र-नरेश सातकर्णीने खारवेलको अपने राज्यमे-से गुजरने देनेमे विरोध किया, अत प्रथम उसीसे युद्ध करके उसे परास्त किया और फिर मूषिक देशपर आक्रमण करके उसे ई० पू० १७१ मे कलिगमे सम्मिलित कर लिया।

भोजक, रठिक-विजय

राज्यके चौथे वर्षमे खारवेलने फिर पश्चिमकी ओर चढाई की। भोजक और राष्ट्रिकोने खारवेलके विरुद्ध सातकर्णीकी सहायता की थी। इसीलिए उनको जीतनेके पश्चात् इनकी भी खबर ली। यह दोनो राज्य गण-तन्त्र राज्य थे। इन दोनो गण-राज्योने युद्धमे पराजित होनेपर अपने मुकुट खारवेलके चरणोमे झुकाकर अधीनता स्वीकार की। यह खारवेलकी दिग्विजयका वास्तवमे प्रारम्भ था।

मगध-विजय

राज्य-प्राप्तिके छठे वर्ष उसने राजसूय यज्ञ किया और सातवे वर्ष विवाह किया और आठवे वर्ष ई० पू० १६५मे मगधकी ओर विजय-यात्रा करने निकला। अर्थात् दक्षिण और पश्चिममे साम्राज्य स्थापित कर लेनेपर अब वह उत्तर भारतको विजित करने चला। यह विजय-यात्रा, यात्रियोके समान सैर नही थी। भारतके सबसे प्रबल सम्राट् पुष्यमित्रसे लोहा लेना था। यह पुष्यमित्र मौर्य-साम्राज्यका अन्त करके स्वय सम्राट् बना था। सिकन्दर भी जिन प्रदेशोको विजित न कर सका था, वही यवनराज दिमेत्रने विजय किये थे। दिमेत्र भारतका सार्वभौम सम्राट् बनना चाहता था, ऐसे बलशाली योद्धाको शिकस्त देकर पुष्यमित्र समूचे भारतमे महान् शक्तिशाली सम्राट् गिना जाने लगा था। उसके स्वेच्छाचारको रोकनेमे कोई

समर्थ नही था। न मालूम ऐसे बलशाली सम्राट्से युद्ध करनेके लिए कलिग-राज खारवेल क्या खाकर चला था। मगध-नरेश पुष्यमित्र खारवेलका आक्रमण सुन मथुराको चला गया, और वहाँ खारवेलके धावेकी प्रतीक्षामे रहा। पुष्यमित्रके मथुरा चले जानेपर खारवेलने अपना मनसूबा स्थगित कर दिया और कलिंगको चला गया।

नवे वर्ष कलिगमे उसने महाविजय प्रासाद बनवाया। राज्य-प्राप्तिके दसवे वर्षमे उसने दण्ड, सन्धि और साम हाथमे लेकर फिर विजयके लिए प्रस्थान किया, जिनपर चढाई की, उनके मणि-रत्न प्राप्त किये। ग्यारहवे वर्षमे आवराजाकी बसाई हुई पिथुड नामकी मण्डी गधोके हलसे जुतवा डाली और एकसौ तेरह बरस पुराने तामिल-देश-सघात (कई राष्ट्रोके गुट्ट) को तोड डाला। जो तामिल-साम्राज्य मौर्य-राजाओके अधीन होनेसे बचा रहा, उसे खारवेलने अपने अधीनस्थ कर लिया। बारहवे वर्ष उत्तरापथके राजाओको त्रस्त किया और उसके बाद उसी वर्ष वह मगधके निवासियोमे भय उत्पन्न करता हुआ अपनी सेनाओको गगा पार ले गया और भारत-सम्राट् कहलानेवाले पुष्यमित्रको परास्तकर उसे अपने पैरोमे गिराया तथा राजा नन्द-द्वारा ले जाई गई राजवशके इष्टदेवकी ऋषभनाथकी मूर्तिको पुन हस्तगत करके कलिगमे स्थापित किया। मगध-राजा नन्दवर्द्धन और अशोकने कलिग जीता था, तथा पुष्यमित्रने जैनो और बौद्धोको दु ख पहुँचाया था, अत. खारवेलने मगध-विजय करके उक्त अप-मानोका प्रतिशोध ले लिया।

खारवेल इतिहासके विशेष अन्वेषक जायसवाल महोदय लिखते है कि.—"इस महाविजयके बाद जब कि शुग, सातवाहन और उत्तरा-पथके यवन सब दब गये थे, खारवेलने जो राजसूय यज्ञ पहिले ही कर चुके थे, एक नये प्रकारका पूर्त ठाना, उसे जैनधर्मका महाधर्मानुष्ठान कहना

चाहिए। उन्होने भारतवर्प भरके जैन-यतियो, जैन-तपस्वियो, जैन-ऋषियो और पण्डितोको बुलाकर एक धर्म-सम्मेलन किया। इसमे उन्होने जैन-आगमको विभक्त करा करके पुनरुपादित कराया। ये अग मौर्य-कालमे कलिंग देश तथा और देशोमे लुप्त हो गये थे। अग सप्तिक और तुरीय अर्थात् ११अग प्राकृतमे, जिसमे ६४ अक्षरकी वर्णमाला मानी जाती थी, सम्मेलनमे सकलित किये गये। खारवेलको 'महाविजयी' पदवीके साथ 'खेमराजा' 'भिक्षुराजा' 'धर्मराजा' की पदवी अखिल भारतवर्षीय जैन-सघने दी। क्योकि शिलालेखमे, सबसे बडा और अन्तिम चरम कार्य यही माना गया है और जैनसघयन तथा अगसप्तिक तुरीय-सपादनके बाद ये पदवियाँ जैन-लेखकने खारवेलके नामके सग जोडी है। शिलालेख लिखनेवाला भी जैन था, यह लेखके श्रीगणेश, 'नमो अरहतान, नमोसव-सिघान' से साबित है.. ....खारवेलने कुमारी पर्वतपर—जहाँ पहले महावीर स्वामी या कोई दूसरे जिन उपदेश दे चुके थे, क्योकि उस पर्वतको सुप्रवृत्त विजयचक्र कहा है—स्वय कुछ दिन तपस्या, व्रत, उपासक रूपसे किये और लिखा है कि—जीव-देहका भेद उन्होने समझा। खारवेलके पूर्व पुरुषका नाम महामेघवाहन और वशका नाम एलचेदिवश था। इनकी दो रानियोका नाम लेखमे है। एक बजिर घरवाली थी।

बजिर घरवाली अब वैरागगढ (मध्यप्रदेश) कहा जाता है और दूसरी सिहपथ या सिहप्रस्थकी सिधुडा नामक थी। जिनके नामपर गिरिगुहा-प्रासाद, जो हाथीगुफाके पास है, उन्होने बनवाया। इसे अब रानीगौर कहते है"[1]

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक ३।

खारवेलका विवाह—

खारवेलकी इसी दूसरी रानीने अपने पतिकी अमरकृतिको जीवित रखनेके लिए हाथीगुफामे उक्त शिलालेख अकित करवाया था, किंतु उससे खारवेलकी दो रानियाँ एक वजिर घरवाली और द्वितीय सिहप्रस्थकी सिघुडा नामक पटरानी थी, इससे अधिक वृत्तान्त नही मिलता। खारवेलके विवाह-सम्बन्धमे जानकारी प्राप्त करनेकी प्यास वनी ही रहती है। उडीसाके ख्यातिनामा विद्वान् प० नीलकण्ठदास एम० ए० ने खारवेलकी पटरानी सिंहप्रस्थ राजकुमारीके विवाहका उडियामे एक काव्य लिखा है, आपने उसमे सिघुडाके स्थानपर उसका धूसी नाम लिखा है। उसी उडिया काव्यका सक्षिप्त साराश 'प्राचीन कलिग' नामक हिदी पुस्तकके आधार-पर यहाँ दिया जाता है।

खारवेल पाण्ड्य देशको विजित करते हुए, जावा और वाली द्वीपकी ओर निकल गये। वहाँ उन्हे मालूम हुआ कि फारस देशमे जानेवाले कलिंगके व्यापारी सिन्धुनदीके किनारेसे पश्चिमकी ओर निर्विघ्न और सुगमता-पूर्वक व्यापार नही कर सकते। उन्हे कर दण्ड वहुत देना पडता है और स्वाभिमान भी उनका अक्षुण्ण नही रहने पाता है। कलिग-व्यापारियोका अपमान, कलिंग-राष्ट्रका अपमान था, स्वदेशाभिमानी कलिग-नरेश भला इस अपमानको सुनकर कैसे चुप वैठ सकता था। दूसरे उसे यह भी विदित था कि कलिग कितना ही आज शक्तिशाली और समृद्धि-शाली है, किन्तु उसके व्यापारमे रुकावटे पडने लगेगी तो, वह अवश्य एक-न-एक दिन दीन-हीन राष्ट्र वन जायगा "व्यापारे वसते लक्ष्मी"— यह ध्यान आते ही कलिगके प्रवासी व्यापारियोके दु ख-निवारणार्थ वह सिन्धुदेशकी ओर ससैन्य चल पडा।

विजिर राज्य, (अफगानिस्तानका पूर्व प्रदेश) सिन्धुके पश्चिम तक फैला हुआ था और सिन्धु देशमे एक पाताल (पटल) नगर था। उसके पश्चिममे द्रविड जातिके किसान रहते थे, उनका भी एक राजा था। इसी कृषक राजासे विजिरके राजाकी मित्रता थी। इस विजिर राजाकी पुत्रीका नाम धूसी था। दमेत्रियके कपट पूर्वक विजिर हस्तगत किये जानेपर विजिर राजा और उसका पुत्र तो अपने किसी अन्य मित्र राजाके आश्रयमे चले गये और धूसी राजकुमारीको युवा होनेके कारण अपने मित्र कृषक सरदारके यहाँ छोड़ गये जो राजकुमारीका पुत्रीके समान लालन-पालन करने लगा।

खारवेलने ससैन्य सिन्धुनदीके मुहानेपर स्थित पाताल नगरमे डेरे डाले, और कृषक देशके उस वृद्ध सरदारको भी अपनी ओरसे लडनेके लिए निमन्त्रण दिया। राजकुमारी धूसीने एक रोज़ खारवेलको देख लिया। चार आँख होते ही वह इसके वीर-वेशपर मुग्ध हो गई। कृषक सरदार खारवेलको अपनी सेना देनेका वचन दे चुका था, किन्तु उचित सेनानायक न होनेके कारण चिन्तित था और स्वय वृद्ध होनेके कारण सेना-सचालन योग्य नही था। राजकुमारी धूसी अपने धर्मपिताके सकटको समझ गई। वह युद्ध-विद्यामे काफी निपुण थी, अत जिद करके यह भार उसने अपने ऊपर ले लिया, और पुरुष वेशमे अपनी छोटी-सी सेना लेकर खारवेलके साथ जा मिली।

युद्धके समय यवन-नरेश दमेत्रियने खारवेलके साथ कपट-सन्धिका जाल रचा, और विजिर राजाके साथ विजिरमे आकर सन्धि करनेके लिए खारवेलको राजी कर लिया। विजिर राजकुमारी दमेत्रियके इस जालसे शकित थी। अत वह विजिरमे न जाकर अपने थोडे-से सैनिकोके साथ विजिरके वाहर चौकन्नी होकर अवसरकी प्रतीक्षा करने लगी।

दमेत्रियने खारवेलको असावधान समझकर रातके समय घेर लिया, खार-वेलकी सेना अभी सावधान होने भी नही पाई थी कि धूसी अपने सैनिकोको लेकर दमेत्रियपर पीछेसे बाजकी तरह झपट पडी। दमेत्रिय इस आक-स्मिक आक्रमणसे घबरा-सा गया, इधर खारवेल भी अपनी सेनाको लल-कारकर मैदानेजगमे आ डटा। दुतर्फी मारसे दमेत्रियके पाँव उखड गये, और उसे परास्त होकर विजिर छोडना पडा, किन्तु खारवेल इस अचानक धावेके कारण सख्त घायल होनेसे घोडेसे गिरना ही चाहता था, कि धूसीने उसको तुरन्त सम्भाल लिया और शिविरमे लाकर उसकी अत्यन्त साव-धानतापूर्वक परिचर्य्या करके स्वस्थ कर लिया। इस जीतका सारा श्रेय पुरुपवेशधारी धूसीको प्राप्त हुआ। खारवेलने उससे इच्छित वस्तु माँगने-का अनुरोध किया, तब राजकुमारीने खारवेलको पतिके रूपमे वरण करनेकी अभिलाषा प्रकट कर दी। खारवेलके यह पूछनेपर कि 'तुमने इतनी-सी बातके लिए यह पथ क्यो स्वीकार किया?' तब राजकुमारी धूसीने लजाते हुए उत्तर दिया, 'वीरोके पास वीर-वेशमे ही आना उपयुक्त था।' विजिर जीता हुआ प्रदेश उसके वास्तविक स्वामी, राजकुमारी धूसीके पिताको दे दिया, और खारवेल धूसीको पटरानी बनाकर कलिग चला आया।

खारवेलका द्वितीय विवाह किस प्रकार हुआ, यद्यपि इसका, कही उल्लेख नही है, किन्तु उडीसाकी एक देवीने मुझे निम्न अनुश्रुति सुनाई थी—एक राजकन्याने प्रतिज्ञा की थी, कि जो मुझे युद्धमे जीत सकेगा, वही मेरा पति होगा। इस कन्याको वरण करनेके लिए स्वयवरमे अनेक योद्धा आये, किन्तु सबने मुँहकी खायी। अन्तमे खारवेलने इसे युद्धमे परास्त करके रथमे बलात् बैठा लिया। तब प्रसन्नतापूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध राजकन्याने खारवेलको वरमाला पहनाई। सिहनीको सिह ही वरण कर सकता है, अन्य नही।

खारवेलका शासन और व्यक्तित्व

भारतसे यवनोको पूरी तरह खदेडनेका श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्यके बाद महामेघवाहन खारवेलको ही प्राप्त हुआ। वह अपने तीनो प्रतिद्वन्द्वियो और भारतके अन्य छोटे-बड़े शासकोको विजय करके भारतका चक्रवर्ती बन बैठा। चक्रवर्त्ती खारवेल, केवल साम्राज्य-अभिलाषी नही था। वरन् वह महान् सम्राट् देश, समाज और धर्मकी उन्नतिमे अत्यन्त प्रगतिशील था। यद्यपि वह जैनकुलोत्पन्न एक धर्मिष्ठ राजा था। उसे जैन-धर्मानुसार जीवन व्यतीत करनेके कारण "भिक्षुराजा" की पदवी प्राप्त हुई थी। वह जैनधर्मनिष्ठ एक श्रद्धालु जैन था, किन्तु वह अन्य धर्मद्वेषी नही था। उसका हृदय विशाल था, वह अपने धार्मिक विश्वासानुसार आचरण करते हुए, सभी धर्मोको आदरणीय दृष्टिसे देखता था। जहाँ उसने जैनधर्मके उत्थानके लिए एक धर्मानुष्ठान किया, वहाँ उससे पूर्व राजसूययज्ञ करके सब धर्मों और राष्ट्रोमे एकताका सूत्रपात किया। प्रजापर लगे हुए समस्त कर क्षमा कर दिये और पौर(म्यूनिसपलकमेटी) जनपद (डिस्ट्रिक्टबोर्ड) नामकी सस्थाओको अनेक अधिकार दिये। कृषि तथा जलकी सुविधाके लिए बहुत-से तालाब खुदवाये, तथा स्थान-स्थान-पर सार्वजनिक मनोरजनके लिए उद्यान बनवाये, सगीत और वाद्यका प्रबन्ध करवाया। वह स्वय भी गान्धर्व-विद्यामे पारगत था। ब्राह्मणोको विपुल धन-दान दिया। हाथीगुफाके शिलालेखसे प्रकट होता है कि खार-वेलके शासन-कालमे कलिंग-प्रजा अत्यन्त सुखी थी। खारवेलके साम्राज्य-मे, सुख, सम्पत्ति, वैभव और ऐश्वर्यकी प्रचुर सामग्री उपस्थित थी। सम्पत्तिके साथ-साथ उसके राज्यमे धार्मिक स्वतन्त्रता होनेके कारण चार चाँद लग गये थे। उस समय कलिंगकी सीमा, उत्तरमे गगा नदी और बिहार प्रदेश, पश्चिममे बरार गौंडवाना राज्य, महाराष्ट्रदेश और

दीवानोंकी टेक

दीवानी दुनिया जिन्हे दीवाना कहती है, ऐसे ही दीवाने भारतके भिन्न-भिन्न पागलखानोमे रह रहे थे। भारत-विभाजनके बाद पुलिस-फौजके समान इन दीवानोके भी बटवारेका निर्णय हुआ। यानी हिन्दू दीवाने पाकिस्तानसे भारत और मुसलिम दीवाने भारतसे पाकिस्तान परिवर्तित किये जानेका निश्चय हुआ।

बटवारेकी सूचना लाहौरके पागलखाने पहुँची तो सुनते ही एक दीवाना पेडपर चढकर 'अखण्ड भारत जिन्दाबाद'के नारे लगाने लगा। पुलिसने जब उसे उतरनेको ललकारा तो वह बा-आवाज़ बुलन्द, बोला—

"अब यह जमीन हम लोगोके रहने योग्य नही रही है। हमारी गैरत इजाजत नही देती कि अब हम ऐसी ज़मीनपर पाँव रखे जो इन्सानके खूनकी प्यासी हो गई है। जो मुल्क हमेशासे हिन्दुस्तान कहलाता आ रहा है, वह रातो-रात पाकिस्तान कैसे बन गया...... ?"

पुलिस २-३ घण्टेतक उसे उतरनेके लिए बाध्य करती रही, परन्तु वह उतरनेके बजाय उपर्युक्त ढगके वाक्य बोलता हुआ पेडकी इस डालसे उस डालपर कूदता-फाँदता उत्तरोत्तर पेडकी फुनगीपर चढता गया तो पुलिसके २-३ सिपाही बाध्य होकर उसे उतारनेके लिए पेडपर चढने लगे। पुलिसको पेडपर चढते देख उसने तुरन्त अपनी धोती खोलकर, उसका एक सिरा पेडसे बाँधा और दूसरे सिरेका फन्दा बनाकर गलेमे डालकर पेड़से झूल गया। जब पुलिस उसके पास पहुँची तो उसके प्राण-पखेरू हिन्दुस्तान-पाकिस्तानके बन्धनसे मुक्त हो चुके थे।

× × ×

दीवानोसे भरी हुई लारियाँ जब कथित भारत और पाकिस्तानकी

सीमाओंपर परिवर्त्तित करनेके लिए खडी हुई तो भारतकी लारीमे बैठे हुए दीवानोमे-से एक इलाहाबादी दीवानेको सिपाहियोकी बातचीतसे यह आभास हो गया कि उसका इलाहाबाद भारतमे ही रख लिया है, पाकिस्तान नही भेजा गया है। जब दीवाने पकड-पकडकर इधर-उधरकी लारियोमे ठूँसे जाने लगे तो उसने लारीसे उतरनेसे इनकार कर दिया। जोर-जबर्दस्ती करनेपर बोला—"आप मेरी जान भले ही निकाल दे, मगर मै अपने वतनसे हरगिज पाकिस्तान-वाकिस्तान नही जाऊँगा। मै सिर्फ हिन्दुस्तानी हूँ। यही पैदा हुआ हूँ, यही रहूँगा। अगर आप मुझे यहाँ रहने न देगे तो मरनेसे तो न रोक सकेगे? मुझे वतनमे रहनेको न सही मरनेको तो दो गज जमीन मिलेगी।"

जब उसे बलात् घसीटकर पाकिस्तानकी 'लारीकी तरफ ले जाने लगे तो उसने 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' कहकर कुछ ऐसी चीख मारी कि सिपाही सहमकर दूर हट गये। क्षणभर बाद पुलिसने देखा तो उसकी रूह मरहूम 'जिन्हा' को मुबारकबाद देनेके लिए जन्नतको परवाज कर चुकी थी। केवल उसका शरीर उस गलियारेमे पडा हुआ था, जहाँसे हिन्दुस्तान-पाकिस्तानकी सीमाएँ प्रारम्भ होती थी।[1]

१५ जून १९५६ ई०

---

[1] मरहूम सआदत हुसैन मिण्टोकी एक कहानीका सक्षिप्त भाव।

शहीद बकरी

हरे-भरे पहाड पर बकरियाँ चरने जाती तो दूसरे-तीसरे रोज़ एक-न-एक बकरी कम हो जाती। भेडियेकी इस धूर्त्ततासे तग आकर चरवाहेने वहाँ बकरियाँ चराना बन्द कर दिया और बकरियोने भी इस नागहानि मौतसे बचनेके लिए बाडेमे कैद रहकर जुगाली करते रहना ही श्रेष्ठ समझा। लेकिन न जाने क्यो एक युवा नई बकरीको यह बन्धन पसन्द नही आया। "अत्याचारीसे यूँ कबतक प्राणोकी रक्षा की जा सकेगी? वह पहाडसे उतरकर किसी रोज़ बाडेमे भी तो कूद सकता है! शिकारीके भयसे मूर्ख शुतुरमुर्ग रेतेमे गर्दन छुपा लेता है। तब क्या शिकारी उसे बख्श देता है?" इन्ही विचारोसे ओत-प्रोत वह हसरतभरी नज़रोंसे पर्वतकी ओर देखती रहती। साथिनोने उसे आँखो-आँखोमे समझानेका प्रयत्न किया कि "वह ऐसे मूर्खतापूर्ण विचारोको मनमे न लाये। भोग्य सदैवसे भोगनेके लिए ही उत्पन्न होते रहे है। भेडियेके मुँह हमारा खून लग चुका है, वह अपनी आदतसे कभी बाज़ नही आयगा।"

लेकिन वह नवीन युवा बकरी तो भेडियेके मुँहमे लगे खूनको ही देखना चाहती थी। वह किस तरह झपटता है, यही करतब देखनेकी लालसा उसकी बलवती होती गई। आखिर एक रोज़ मौका पाकर बाडेसे वह निकल भागी और पर्वतपर चढकर स्वच्छन्द विचरती, कूदती, फलाँगती दिनभर पहाडपर चरती रही। मनमानी कुलेले करती रही। भेडियेको देखनेकी उत्सुकता भी बनी रही, परन्तु उसके दर्शन न हुए। झुरपुटा होनेपर लाचार जब वह नीचे उतरनेको बाध्य हुई तो रास्तेमे दबे पाँव भेडिया आते हुए दिखाई दिया। उसकी रक्तरजित आँखे, लपलपाती जीभ और आक्रमणकारी चालसे वह सब कुछ समझ गई।

भेडिया मुसकराकर बोला—"तुम बहुत सुन्दर और प्यारी मालूम होती हो। मुझे तुम्हारी-जैसी साथिनकी आवश्यकता थी, मैं कई रोजसे अकेलापन महसूस कर रहा था। आओ तनिक साथ-साथ पर्वतराजकी सैर करें।"

बकरीको भेडियेकी बकवास सुननेका अवसर न था। उसने तनिक पीछे हटकर इतने जोरसे टक्कर मारी कि असावधान भेडिया सम्भल न सका। यदि बीचका भारी पत्थर उसे सहारा न देता तो औंधे मुँह नीचे गारमें गिर गया होता।

भेडियेकी जिन्दगीमें यह पहला अवसर था। वह किंकर्तव्यविमूढ-सा हो गया। टक्कर खाकर अभी वह सम्भल भी न पाया था कि बकरीके पैने सींग उसके सीनेमें इस जोरसे लगे कि वह चीख उठा। क्षत-विक्षत सीनेसे लहूकी बहती धार देख भेडियेके पाँव उखड गये। मगर एक निरीह बकरीके आगे भाग खडा होना उसे कुछ जँचा नहीं। वह भी साहस बटोर-कर पूरे वेगसे झपटा। बकरी तो पहलेसे ही सावधान थी, वह तरह देकर एक ओरको हट गई और भेडियेका सर दरख्तसे टकराकर लहू-लुहान हो गया।

लहूको देखकर अब उसके लहूमें भी उबाल आ गया। वह जी जानसे बकरीके ऊपर टूट पडा। अकेली बकरी उसका कबतक मुकाबिला करती? वह उसके दाँव-पेंच देखनेकी लालसा और अपने अरमान पूरे कर चुकी थी। साथिनोंकी अकर्मण्यतापर तरस खाती हुई बेचारी ढेर हो गई।

पेडपर बैठे हुए तोतेने मुसकराकर मैनासे पूछा—

"भेडियेसे भिडकर भला बकरीको क्या मिला?"

मैनाने सगर्व उत्तर दिया—"वही जो अत्याचारीका सामना करनेपर पीडितोंको मिलता है। बकरी मर जरूर गई है, परन्तु भेडियेको घायल

करके मरी है। वह भी अब दूसरोपर अत्याचार करनेको जीवित नही रह सकेगा। सीने और मस्तकके घाव उसे सड-सडकर मरनेको बाध्य करेगे। काश, उसकी अन्य साथिनोने उसकी भावनाको समझा होता। छिपनेके बजाय एक साथ वार किया होता तो, आज बाडेमे कैदी-जीवन व्यतीत करनेके बजाय पहाडपर नि शक और स्वच्छन्द विचरती होती ?"

तोता अपना-सा मुँह लेकर चुपचाप शहीद बकरीकी ओर देखने लगा।[1]

१६ जून १९५५ ई०

---

[1] डाक्टर जाकिरहुसेन साहबकी एक कहानीसे प्रभावित होकर, जो कि सम्भवतः १९४४ के लगभग किसी पत्रिकामें पढ़ी थी।

मित्रका विश्वास

उर्दूके प्रसिद्ध साहित्य-सेवी और नज्म-आन्दोलनके प्रवर्तक शम्स-उल-उलमा मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' वृद्धावस्थामे मस्तिष्कका सन्तुलन खो बैठे थे। मस्तिष्क-जैसा कोमल-अग सन्तुलन न खोता तो और उपाय भी क्या था? इतनी परेशानियो और मुसीबतोके आगे तो वज्र भी विचलित हो उठता।

१८५७ के विप्लवमे उनके पिता फाँसी चढा दिये गये। स्वय आजाद भरा घर छोडकर जान बचाकर भागनेको विवश हुए। इधर-उधर दर-दरकी ठोकरे खाते हुए, समूचे परिवारको ढोते हुए किसी तरह लाहौर पहुँचे। वहाँ कॉलिजमे प्रोफेसर नियुक्त हो गये। अध्यापनके अतिरिक्त शेष समय साहित्य-सृजन करते रहे, किंतु आपदाओसे सदैव घिरे रहे। एक-एक करके १४ सन्तानोको कब्रमे उतारना पडा। सुख-दुःखकी साथी पत्नी चल बसी। लेखन-कार्यमे पूर्ण सहायक व्याही-त्याही युवा लडकी अल्लाहको प्यारी हो गई। मकानमे आग लग गई। उसपर भी हिम्मत न हारी। एकाग्रचित्तसे साहित्य-सृजन और साहित्य-सेवाके लिए देश-विदेशका भ्रमण करते रहे। जर्जर शरीर साथ देता रहा, परन्तु मस्तिष्क विकृत हो उठा।

इसी आलममे एक रोज चुपचाप घरसे निकल पडे और जगलोकी खाक छानते हुए पैदल दिल्ली पहुँचे। न सरपर पगडी, न पाँवमे जूते, चिथडोमे मलबूस, परेशान हाल मौलानाको लोगोने देखा तो सकतेमे रह गये। कहाँ उनका वह प्रतिष्ठित व्यक्तित्व और कहां यह शोचनीय स्थिति? देखकर कलेजा मुँहको आता था। जौक-दर-जौक लोग नियाज हासिल

करने आते थे, परन्तु उन्हे आपेमे न देखकर सर पीटकर रह जाते थे। इष्ट-मित्रोने उन्हे अपने-अपने यहाँ ले जानके काफी प्रयास किये, किन्तु सब व्यर्थ। ख्याति-प्रतिष्ठा, मान-अपमान, लोक-लिहाज, भूख-प्याससे आजाद होकर मौलाना 'आजाद' दिल्लीके उन गली-कूचो, सडकों-बाज़ारोमे नगे पाँव, फटे हाल घूमते थे, जहाँ कभी उनके कदमोमे लोग आँखे बिछाये रहते थे।

ऐसी स्थितिमे उनके बाल्य-सखा-शम्स-उल-उलमा मुशी ज़काउल्लाह साहब उन्हे अपने यहाँ किसी तरह ले जानेमे सफलता प्राप्त कर सके। उन्हे अपने यहाँ बहुत आरामसे रखा। उनकी हर आवश्यकताओका ध्यान रखा और हर तरहसे उनकी नाज बरदारियाँ उठाई।

एक रोज मुशीजी नाईसे बाल बनवा रहे थे कि यकायक 'आजाद' उससे कैंची और उस्तरा छीनकर मुशीजीके स्वय बाल बनाने लगे। मुशीजीने आजादको बाल बनानेके लिए उद्यत देख नाईसे कहा—"तू हट जा, आज हमारे बाल हमारे दोस्त बनायेगे।" और चुपचाप निशक उनसे बाल बनवाते रहे। आजादने निहायत सलीकेसे पहिले कैंचीसे दाढ़ी छाँटी, फिर उस्तरेसे खत बनाया।

इष्ट-मित्रोको जब इस घटनाका इल्म हुआ तो उलाहना देते हुए बोले—"मुशीजी आप भी कमाल करते हैं? ऐसे दीवानेके हाथमे कैंची-उस्तरा देकर अपनेको उनके सुपुर्द कर दिया। भला बताइये नाक, कान, गला कुछ भी तराश देता तो क्या होता?" मुशीजीने मुसकराते हुए फरमाया—"मेरा दोस्त दीवाना जरूर है, मगर वह किसीका गला नही काटेगा, इतना यकीन रखो। इल्मो-दीनका जामा पहिने हुए भी जो दूसरोका गला काट रहे हैं, उन आकिलोसे मेरा यह दीवाना दोस्त ब-दरजह काबिले-ऐतमाद (विश्वास-योग्य) है।"

१० फरवरी १९५६ ई०

सौदाकी सहृदयता

उर्दूके प्रसिद्ध कसीदागो मिर्जा 'सौदा' जितने ज्यादा दिलके साफ थे, उतने ही गुस्सैल भी थे। जब किसीपर बिगडते, फौरन् अपने नौकरको पुकारते—"अरे गुचा ! ला तो मेरा कलमदान जरा मैं इसकी खबर तो लूं, यह मुझे समझा क्या है।"

फिर शर्मकी आँखे बन्द और बेहयाईका मुँह खोलकर वोह्-वोह बेनुकत सुनाते थे कि शैतान भी अमान माँगे।

'सौदा'की कही हुई हिजो एक कानसे दूसरे कान पहुँचते-पहुँचते लखनऊके गली-कूचोमे बहुत शीघ्र फैल जाती थी। परिणाम-स्वरूप जिसके विरुद्ध हिजो कही जाती वह लखनऊभरमे उपहासास्पद बन जाता था।

गरज हर शरीफ आदमी आपसे घबराता था कि न जाने कब किस बात पर बरहम हो जाये और बदनाम करके रख दे। लेकिन सेरको सवा-सेर भी मिल ही जाते हैं। एक पठानने तो भरे दरबारमे सीनेपर चाकू रख दिया था।

एक बार सौदाके प्रतिद्वन्द्वी मिर्जा फाखिरके शिष्य आपके घरपर चढ आये और आपके पेटपर छुरी रखकर कहा—"जो कुछ तुमने हमारे उस्तादके बारेमे कहा है, उसे वापिस लो और चलकर उस्तादके सामने फैसला करो"।

सौदाको ज़बान चलाना तो आता था, मगर छुरीसे वास्ता न पडा था। अत. सब औसान भूल गये और गर्दन झुकाये उनके साथ जाना पडा।

शिष्य-समूह आपको घेरे हुए चौक बाजारमे पहुँचा तो बेइज्जत करनेपर उतारू हो गया। लेकिन उस समय भाग्यसे नवाब आसफुद्दौलाके छोटे भाई सआदतअली खाँ उधर आ निकले, भीड़मे सौदाको घिरा हुआ देखकर

उन्हें अपने साथ हाथीपर विठाकर ले गये, और नवाब साहबसे जाकर कहा —"भाई साहब, बडा गजब है। आपकी हुकूमत और शहरमे यह कयामत ? बाबाजानने जिसको बिरादरमन, और मुशफक महरबान कहकर खत लिखा। आरजूएँ करके बुलाया और वह न आया। हमारी खुश किस्मतीसे अब वही 'सौदा' यहाँ आ गये है तो वे इस हालतमे है कि ऐन-वक्तपर मै न पहुँचता तो बदमाशोने उन्हे वेइज्जत कर डाला होता।"

आसफुद्दौला सुनते ही क्रुद्ध होकर बोले—"बाबाजानने सौदाको भाई लिखा तो 'वे हमारे बाबा हुए। फाखिरने सौदाको नही हमको वेइज्जत किया।"

नवाब साहबने तत्काल शेखज़ादोके मुहल्ले-का-मुहल्ला उखडवाकर फेक देने, उन्हे शहरसे निकाल देनेका हुक्म दिया। और मिर्जा फाखिरको जिस हालतमे हो उसी हालतमे हाजिर करनेका हुक्म हुआ।

इस हुक्मकी भनक 'सौदा'के कानमे पडी तो वे घबराये हुए नवाब साहबके हुजूरमे पहुँचे और हाथ बाँधकर अर्ज की—"जनाबआली हम शायरोके झगडे कागज-कलमके मैदानमे खुद-ब-खुद मिट जाते है। आप बीच-मे न पडे। खुदाके लिए उन्हे माफ कर दीजिए।"

सौदाकी इस सहृदयतापर नवाब मुसकराकर रह गये।[१]

३ सितम्बर १९५६ ई०

---

[१]आबेहयातके आधारपर

लेखककी अन्य रचनाएँ

उर्दू शायरी और उसका इतिहास

उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन–

"यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने सक्षेपमे उन्होने उर्दू-छद और कविताका चतुर्मुखीन परिचय कराया। सग्रह की पक्ति-पक्तिसे उनकी अतर्दृष्टि और गभीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मै समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ स० ६४० ० मूल्य आठ रु०

डॉ० अमरनाथ झा–
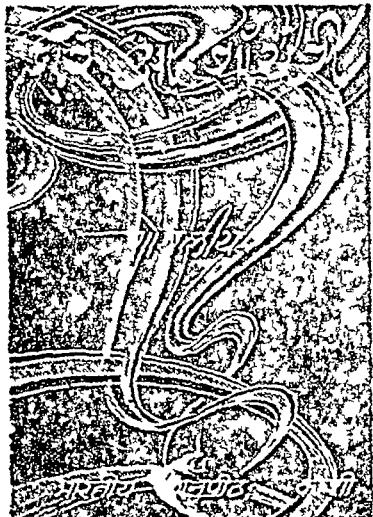
"गोयलीयजीने बडे परिश्रमसे इस पुस्तकको लिखा है। इसमें सभी प्रमुख कवियोका उल्लेख है, उनके जीवनकी मुख्य बाते लिख दी गयी है, जिस वातावरणमे उन्होने कविता लिखी, उसका वर्णन है। उनके काव्य-गुरु और शिष्योके नाम बताये गये है। उनकी रचनाओंके गुण-दोष उदाहरणोके साथ वर्णन किये गये है। इसके पढनेसे उर्दू कविताका पूरा परिचय मिलता है।"

पृ० सं० ७८४ • मूल्य आठ रु०

मौलिक कहानियाँ

आज दैनिक—

"ये कहानियाँ चरित्रनिर्माण तथा अतीतके अनुभवोसे हमे लाभान्वित करती है । 'गहरे पानी पैठ' में श्री गोयलीयने जिन रत्नोको हिन्दी ससारमे सुलभ किया है, निश्चय ही उनसे हमारा जीवन सुखी और सम्पन्न हो सकता है । लेखनशैलीमे प्रभावोत्पादकता और मार्मिकता है । पुस्तक मननीय और सग्रह योग्य है ।"

द्वितीय सस्करण

पृष्ठ स २२४ ● मूल्य ढाई रुपय

विशालभारत—

"प्रस्तुत पुस्तकमे जीवन-निर्माण एवं उत्साह, प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करने वाली १०२ लघु कथाएँ है । इनका स्वरूप लघु है, पर ज्ञानगुम्फन की दृष्टिसे सागर जैसी प्रौढता, विशालता तथा निखार है ।"